पुराण

॥ पुराणं सर्वशास्त्राणां
प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्॥

वर्ष ६३ पुराणकथाङ्क संख्या १

दुर्गति-नाशिनि दुर्गा जय-जय, काल-विनाशिनि काली जय जय।
उमा-रमा-ब्रह्माणी जय जय, राधा-सीता-रुक्मिणि जय जय॥
साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, जय शंकर।
हर हर शंकर दुखहर सुखकर अघ-तम-हर हर हर शंकर॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
जय-जय दुर्गा, जय मा तारा। जय गणेश जय शुभ-आगारा॥
जयति शिवाशिव जानकिराम। गौरीशंकर सीताराम॥
जय रघुनन्दन जय सियाराम। व्रज-गोपी-प्रिय राधेश्॥
रघुपति राघव राजाराम। पतितपावन सीता

(संस्करण १,७५,०००)

भगवान् श्रीहरि सबका कल्याण करें

यद्योगिभिर्भवभयार्तिविनाशयोग्यमासाद्य वन्दितमतीव विविक्तचित्तैः।
तद्वः पुनातु हरिपादसरोजयुग्ममाविर्भवत्क्रमविलङ्घितभूर्भुवः स्वः॥
पायात्स वः सकलकल्मषभेददक्षः क्षीरोदकुक्षिफणिभोगनिविष्टमूर्तिः।
श्वासावधूतसलिलोत्कलिकाकरालः सिन्धुः प्रनृत्यमिव यस्य करोति सङ्गात्॥
नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥

जिनमें जन्म-मृत्युरूप संसारके भय और पीडाओंका नाश करनेकी पूर्ण योग्यता है, पवित्र अन्तःकरणवाले योगिजन जिन्हें ध्यानमें देखकर बारम्बार मस्तक झुकाते हैं, जो वामनरूपसे विराट्रूप धारण करते समय प्रकट होकर क्रमशः भूलोक, भुवर्लोक तथा स्वर्गलोकको भी लाँघ गये थे, श्रीहरिके वे दोनों चरणकमल आपलोगोंको पवित्र करते रहें। जो समस्त पापोंका संहार करनेमें समर्थ हैं, जिनका श्रीविग्रह क्षीरसागरके गर्भमें शेषनागकी शय्यापर शयन करता है, उन्हीं शेषनागकी श्वास-वायुसे कम्पित हुए जलकी उत्ताल तरङ्गोंके कारण विकराल प्रतीत होनेवाला समुद्र जिनका सत्सङ्ग पाकर प्रसन्नतासे नृत्य-सा करता जान पड़ता है, वे भगवान् नारायण आपलोगोंकी रक्षा करते रहें। भगवान् नारायण, पुरुषश्रेष्ठ नर, उनकी लीला प्रकट करनेवाली भगवती सरस्वती तथा उसके वक्ता महर्षि वेदव्यासको नमस्कार करके 'जय' (इतिहास-पुराण) का पाठ करना चाहिये।

वार्षिक शुल्क (डाक-व्ययसहित) भारतमें ४४.०० रु० विदेशमें ६ पौंड अथवा १० डालर

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

इस अङ्कका मूल्य (डाक-व्ययसहित) भारतमें ४४.०० रु० विदेशमें ६ पौंड अथवा १० डालर

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका

गोविन्दभवन-कार्यालयके लिये जगदीशप्रसाद जालानद्वारा गीताप्रेस, गोरखपुरमें मुद्रित तथा प्रकाशित

'कल्याण'के सम्मान्य ग्राहकों और प्रेमी पाठकोंसे नम्र निवेदन

१-'कल्याण'के ६३वें वर्ष (वि० संवत् २०४६) का यह विशेषाङ्क 'पुराणकथाङ्क' पाठकोंकी सेवामें प्रस्तुत है। इसमें ४३८ पृष्ठोंमें पाठ्यसामग्री और १० पृष्ठोंमें सूची आदि हैं। कई बहुरंगे तथा सादे चित्र भी यथास्थान दिये गये हैं।

२-जिन ग्राहकोंसे शुल्क-राशि अग्रिम मनीआर्डरद्वारा प्राप्त हो चुकी है, उन्हें 'विशेषाङ्क' सौर वैशाख-अङ्कके सहित रजिस्ट्रीद्वारा भेजे जा रहे हैं तथा जिनसे शुल्क-राशि प्राप्त नहीं हुई है, उन्हें अङ्क बचनेपर ही ग्राहक-संख्याके क्रमानुसार वी०पी०पी० द्वारा भेजा जा सकेगा। रजिस्ट्रीकी अपेक्षा वी० पी० पी० द्वारा 'विशेषाङ्क' भेजनेमें डाकखर्च अधिक लगता है, अतः ग्राहक महानुभावोंसे विनम्र अनुरोध है कि वे वी० पी० पी० की प्रतीक्षा और अपेक्षा न करके अपने तथा 'कल्याण'के हितमें वार्षिक शुल्क-राशि कृपया मनीआर्डरद्वारा ही भेजें। 'कल्याण'का वार्षिक शुल्क डाकखर्चसहित ४४.०० (चौवालीस) रु० मात्र है, जो मात्र विशेषाङ्कका ही मूल्य है।

३-ग्राहक सज्जन कृपया मनीआर्डर-कूपनपर अपनी ग्राहक-संख्या अवश्य लिखें। ग्राहक-संख्या या 'पुराना ग्राहक' न लिखनेसे आपका नाम नये ग्राहकोंमें लिखा जा सकता है, जिससे आपकी सेवामें 'पुराणकथाङ्क' नयी ग्राहक-संख्याके क्रमसे पहुँचेगा और पुरानी ग्राहक-संख्याके क्रमसे इसकी वी० पी० पी० भी जा सकती है। ऐसा भी हो सकता है कि उधरसे आप शुल्क-राशि मनीआर्डरसे भेज दें और उसके यहाँ पहुँचनेके पहले ही इधरसे वी० पी० पी० भी चली जाय। ऐसी स्थितिमें आपसे प्रार्थना है कि आप कृपया वी० पी० पी० लौटायें नहीं, अपितु प्रयत्न करके किन्हीं अन्य सज्जनको 'नया ग्राहक' बनाकर वी० पी० पी० से भेजे गये 'कल्याण'अङ्क उन्हें दे दें और उनका नाम तथा पूरा पता सुस्पष्ट, सुवाच्य लिपिमें लिखकर हमारे कार्यालयको भेजनेका अनुग्रह करें। आपके इस कृपापूर्ण सहयोगसे आपका अपना 'कल्याण' व्यर्थ डाक-व्ययकी हानिसे तो बचेगा ही, इस प्रकार आप भी 'कल्याण'के पावन प्रचारमें सहायक एवं सहयोगी बनकर पुण्यके भागी होंगे।

४-विशेषाङ्क 'पुराणकथाङ्क'के साथमें सौर वैशाख वि० सं० २०४६का (दूसरा) अङ्क भी ग्राहकोंकी सेवामें (शीघ्र और सुरक्षित पहुँचानेकी दृष्टिसे) रजिस्टर्ड पोस्टसे भेजा जा रहा है। यद्यपि यथाशक्य तत्परता और शीघ्रता करनेपर भी सभी ग्राहकोंको अङ्क भेजनेमें अनुमानतः ६-७ सप्ताह तो लग ही सकते हैं, तथापि विशेषाङ्क ग्राहक-संख्याके क्रमानुसार ही भेजनेकी प्रक्रिया होनेसे किन्हीं महानुभावोंको अङ्क कुछ विलम्बसे मिलें तो वे अपरिहार्य कारण समझकर कृपया हमें क्षमा करेंगे।

५-विशेषाङ्कके लिफाफे (रैपर) पर आपकी जो ग्राहक-संख्या लिखी गयी है, उसे आप कृपया पूर्ण सावधानीसे नोट कर लें। रजिस्ट्री या वी० पी० पी०का नंबर भी नोट कर लेना चाहिये, जिससे आवश्यकतानुसार पत्राचारके समय उल्लेख किया जा सके। इससे कार्यकी सम्पन्नतामें शीघ्रता एवं सुविधा होगी एवं कार्यालयकी शक्ति और समय व्यर्थ नष्ट होनेसे बचेंगे।

६-'कल्याण'-व्यवस्था-विभाग एवं 'गीताप्रेस-पुस्तक-विक्रय-विभाग' को अलग-अलग समझकर सम्बन्धित पत्र, पार्सल, पैकेट, मनीआर्डर, बीमा आदि पृथक्-पृथक् पतोंपर भेजने चाहिये। पतेके स्थानपर केवल 'गोरखपुर' ही न लिखकर पत्रालय—गीताप्रेस, गोरखपुरके साथ पिन-२७३००५ भी अवश्य लिखना चाहिये।

व्यवस्थापक—'कल्याण'-कार्यालय, पत्रालय—गीताप्रेस, गोरखपुर, पिन-२७३००५

श्रीगीता-रामायण-प्रचार-संघ

श्रीमद्भगवद्गीता और श्रीरामचरितमानस दोनों विश्व-साहित्यके अमूल्य ग्रन्थ-रत्न हैं। इनके पठन-पाठन एवं मननसे मनुष्य लोक-परलोक दोनोंमें अपना कल्याण-साधन कर सकता है। इनके स्वाध्यायमें वर्ण, आश्रम, जाति, अवस्था आदि कोई भी बाधक नहीं है। आजके समयमें इन दिव्य ग्रन्थोंके पाठ और प्रचारकी अत्यधिक आवश्यकता है। अतः धर्मपरायण जनताको इन कल्याणमय ग्रन्थोंमें प्रतिपादित सिद्धान्तों एवं विचारोंसे अधिकाधिक लाभ पहुँचानेके सदुद्देश्यसे श्रीगीता-रामायण-प्रचार-संघकी स्थापना की गयी है। इसके सदस्योंकी संख्या इस समय लगभग बावन हजार है। इसमें श्रीगीताके छः प्रकारके और श्रीरामचरितमानसके तीन प्रकारके सदस्य बनाये गये हैं। इसके अतिरिक्त उपासना-विभागके अन्तर्गत नित्य इष्टदेवके नामका जप, ध्यान और मूर्तिकी पूजा अथवा मानसिक पूजा करनेवाले सदस्योंकी श्रेणी भी है। इन सभीको श्रीमद्भगवद्गीता एवं श्रीरामचरितमानसके नियमित अध्ययन तथा उपासनाकी सत्प्रेरणा दी जाती है। सदस्यताका कोई शुल्क नहीं है। इच्छुक सज्जन परिचय-पुस्तिका निःशुल्क मँगवाकर पूरी जानकारी प्राप्त करनेकी कृपा करें एवं श्रीगीताजी और श्रीरामचरितमानसके प्रचार-यज्ञमें सम्मिलित होकर अपने जीवनका कल्याणमय पथ प्रशस्त करें।

पत्र-व्यवहारका पता—**मन्त्री, श्रीगीता-रामायण-प्रचार-संघ,** *पत्रालय*—**स्वर्गाश्रम—२४९३०४ (वाया-ऋषिकेश),** *जनपद*—**पौड़ी-गढ़वाल (उ० प्र०)**

साधक-संघ

मानव-जीवनकी सर्वतोमुखी सफलता आत्म-विकासपर ही अवलम्बित है। आत्म-विकासके लिये जीवनमें सत्यता, सरलता, निष्कपटता, सदाचार, भगवत्परायणता आदि दैवी गुणोंका ग्रहण और असत्य, क्रोध, लोभ, मोह, द्वेष, हिंसा आदि आसुरी गुणोंका त्याग ही एकमात्र श्रेष्ठ और सरल उपाय है। मनुष्यमात्रको इस सत्यसे अवगत करानेके पावन उद्देश्यसे लगभग ४१ वर्षपूर्व 'साधक-संघ'की स्थापना की गयी थी। इसका सदस्यता-शुल्क नहीं है। सभी कल्याणकामी स्त्री-पुरुषोंको इसका सदस्य बनना चाहिये। सदस्योंके लिये ग्रहण करनेके १२ और त्याग करनेके १६ नियम बने हैं। प्रत्येक सदस्यको एक 'साधक-दैनन्दिनी' एवं एक 'आवेदन-पत्र' भेजा जाता है, सदस्य बननेके इच्छुक भाई-बहनोंको (इधरमें डाक-खर्चमें विशेष वृद्धि हो जानेके कारण साधक-दैनन्दिनीका मूल्य ०.४५पैसे तथा डाकखर्च ०.३०पैसे) मात्र ०.७५पैसे डाकटिकट या मनीआर्डरद्वारा अग्रिम भेजकर उन्हें मँगवा लेना चाहिये। साधक उस दैनन्दिनीमें प्रतिदिन अपने नियम-पालनका विवरण लिखते हैं। विशेष जानकारीके लिये कृपया निःशुल्क नियमावली मँगवाइये।

पता—संयोजक, **'साधक-संघ' द्वारा—'कल्याण' सम्पादन-विभाग,** *पत्रालय*—**गीताप्रेस,** *जनपद*—**गोरखपुर—२७३००५ (उ० प्र०)**

श्रीगीता-रामायण-परीक्षा-समिति

श्रीमद्भगवद्गीता और श्रीरामचरितमानस दोनों मङ्गलमय एवं दिव्यतम ग्रन्थ हैं। इनमें मानवमात्रको अपनी समस्याओंका समाधान मिल जाता है तथा जीवनमें अपूर्व सुख-शान्तिका अनुभव होता है। प्रायः सम्पूर्ण विश्वमें इन अमूल्य ग्रन्थोंका समादर है और करोड़ों मनुष्योंने इनके अनुवादोंको भी पढ़कर अवर्णनीय लाभ उठाया है। इन ग्रन्थोंके प्रचारके द्वारा लोकमानसको अधिकाधिक परिष्कृत करनेकी दृष्टिसे श्रीमद्भगवद्गीता और श्रीरामचरितमानसकी परीक्षाओंका प्रबन्ध किया गया है। दोनों ग्रन्थोंकी परीक्षाओंमें बैठनेवाले लगभग बीस हजार परीक्षार्थियोंके लिये ४०० (चार सौ) परीक्षा-केन्द्रोंकी व्यवस्था है। नियमावली मँगानेके लिये कृपया निम्नलिखित पतेपर पत्र-व्यवहार करें।

व्यवस्थापक—**श्रीगीता-रामायण-परीक्षा-समिति,** *पत्रालय*—**स्वर्गाश्रम,** **पिन—२४९३०४ (वाया-ऋषिकेश),** *जनपद*—**पौड़ी-गढ़वाल (उ० प्र०)**

'पुराणकथाङ्क'की विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या
१-पुराण-विग्रह भगवान् विष्णु	१
मङ्गलाचरण—	
२-स्वस्त्ययन	२
३-विघ्नं ममापहर सिद्धिविनायक त्वम्	३
४-नमः सवित्रे	४
५-सुभद्रश्रवसे नमो नमः	४
६-तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि	५
७-नमामि ते रूपमिदं भवानि !	६
८-वेदव्यासं सर्वदाहं नमामि	६
९-व्याससूनुं नतोऽस्मि	७
१०-पुराण-महिमा	८
११-कीर्तनीयः सदा हरिः	१०
प्रसाद-आशीर्वाद—	
१२-पुराण (अनन्तश्रीविभूषित ज्योतिष्पीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य श्रीमद्ब्रह्मानन्द सरस्वतीजी महाराजके उपदेशामृत)	११
१३-पुराणोंमें धर्म और सदाचार (पूज्यपाद अनन्तश्री ब्रह्मलीन स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज)	१२
१४-पुराणोंमें भगवन्नाम-महिमा (अनन्तश्रीविभूषित ज्योतिष्पीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य ब्रह्मलीन स्वामी श्रीकृष्णबोधाश्रमजी महाराज)	१४
१५-पुराणोंका परम प्रयोजन—भगवत्प्राप्ति (ब्रह्मलीन स्वामी श्रीअखण्डानन्दजी सरस्वती महाराज)	१६
१६-सुहृत्-सम्मित पुराण (अनन्तश्रीविभूषित दक्षिणाम्नायस्थ शृंगेरी-शारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु शकराचार्य स्वामी श्रीअभिनवविद्यातीर्थजी महाराज)	१८
१७-पुराणोंकी वेदवत् प्रतिष्ठा (अनन्तश्रीविभूषित ऊर्ध्वाम्नाय श्रीकाशी-(सुमेरु) पीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीशंकरानन्द सरस्वतीजी महाराज)	१९
१८-भगवान्‌को प्रसन्न करनेवाले आठ भाव-पुष्प	२०
१९-पुराणोंकी महिमा (अनन्तश्रीविभूषित तमिलनाडुक्षेत्रस्थ काञ्चीकामकोटिपीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य वरिष्ठ स्वामी श्रीचन्द्रशेखरेन्द्र सरस्वतीजी महाराज)	२१
२०-सभी कथाओंका तात्पर्य—भगवत्प्राप्ति (अनन्तश्रीविभूषित श्रीमद्विष्णुस्वामिमतानुयायी श्रीगोपालवैष्णवपीठाचार्यवर्य श्री १०८ श्रीविट्ठलेशजी महाराज)	२२
२१-शास्त्रप्रतिपादित पुराण-माहात्म्य (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	२३
२२-पुराणोंका क्रम और सृष्टिविद्याका निरूपण (महामहोपाध्याय स्व० पं० श्रीगिरिधरजी शर्मा चतुर्वेदी)	२४
२३-साधु कौन ? असाधु कौन ?	२७
२४-हिंदू-संस्कृतिके पुराणोंपर एक दृष्टि (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	२८
२५-मुक्तिका उपाय (श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	३१
२६-पुराण-महिमा (पूज्यपाद श्रीदेवराह्य बाबाजी महाराजके अमृत वचन) [प्रे०—श्रीमदनजी शर्मा शास्त्री]	३३
२७-पुराणोंका महत्त्व (पूज्यपाद श्रीप्रभुदत्त ब्रह्मचारीजी महाराज)	३४
२८-पुराणोंकी प्रामाणिकता, दार्शनिकता और महत्ता (स्वामी श्रीनिश्चलानन्द सरस्वतीजी महाराज)	३५
२९-पुराणकी महिमा एवं माहात्म्य (अनन्तश्री स्वामी माधवाश्रमजी महाराज)	३७
३०-भारतीय पुराणोंका महत्त्व (श्री १०८ दण्डी स्वामी श्रीविपिनचन्द्रानन्द सरस्वतीजी 'जज स्वामी')	३८
३१-सिद्धोंकी पौराणिक प्रासंगिकता (गोरक्षपीठाधीश्वर महन्त श्रीअवेद्यनाथजी महाराज)	३९
३२-पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम् (पं० श्रीलालबिहारीजी मिश्र)	४१
३३-श्रेष्ठ भगवद्भक्त कौन हैं ?	४५
पुराणोंके प्रतिपाद्य विषय—	
३४-प्रधान वर्ण्य विषय	४६
३५-पुराणोंमें सभी शास्त्रों, विद्याओं, कलाओं तथा ज्ञान-विज्ञानका समावेश	४९
पुराणोंमें जीवन-चर्या—	६२
३६-संस्कार	६३
३७-आचार	७१
३८-दैनिक चर्या	७५
३९-देवोपासना	७९
४०-यज्ञ	८८
४१-वर्णाश्रम-धर्म	९२
४२-आश्रम-व्यवस्था	९८
४३-व्रतोपवास	१०१
४४-दान	१०५
४५-दानकी महत्ता	१०७
४६-तीर्थ—	
१-नदी-रूप तीर्थ	१०८
२-भारतके पवित्र कुल-पर्वत	११४
३-सात मोक्षदायिनी पुरियाँ	११८

विषय	पृष्ठ-संख्या
४-चार धाम	११९
५-सप्त बदरी	१२०
६-पञ्चकेदार	१२१
७-पञ्च सरोवर	१२२
८-सप्तक्षेत्र	१२२
९-द्वादश अरण्य	१२४
१०-चतुर्दश प्रयाग	१२६
११-प्रधान द्वादश देवी-विग्रह एवं उनके स्थान	१२६
१२-इक्यावन सिद्ध-क्षेत्र	१२६
४७-तीर्थका फल किसे मिलता है और किसे नहीं मिलता ?	१२७
४८-मानस-तीर्थका महत्त्व	१२८
४९-गृहस्थोंके लिये पुराणोक्त कुछ सामान्य नियम	१२९
५०-महापुराण और उनके पावन प्रसङ्ग—	१३०
१-ब्रह्मपुराण—	१३२
१-परहितके लिये सर्वस्व दान (ला० बि० मि०)	१३४
२-जगन्नाथधाम	१३४
३-अतिथि-सत्कार	१३६
४-भागीरथी गङ्गा	१३७
५-मौतकी भी मौत	१३८
६-प्रतिशोध ठीक नहीं होता (ला० बि० मि०)	१३८
७-व्रतमें जागरण और संगीतका महत्त्व	१४०
२-पद्मपुराण—	
१-संत-समागमके लिये तप (ला० बि० मि०)	१४१
२-सत्यकी महिमा	१४२
३-विश्वहितके लिये आत्मदान	१४३
४-परलोकको न बिगड़ने दें	१४४
५-संतसे वार्तालापकी महिमा	१४४
६-प्रणाम करनेसे ब्रह्माकी आयुकी प्राप्ति	१४५
७-प्रेमियोंके लिये भगवान् भी विह्वल	१४६
८-भगवान् आश्रितोंकी देखभाल करते हैं	१४७
९-पातिव्रत्य-धर्मका महत्त्व	१४८
१०-सबसे बढ़कर धर्म—माता-पिताकी पूजा	१४९
११-सूर्यकी आराधनासे सफेद कोढ़का नाश	१५०
१२-पाँच पितृभक्त पुत्र	१५०
(१) यज्ञशर्मा	१५०
(२) वेदशर्मा	१५०
(३) धर्मशर्मा	१५१
(४) विष्णुशर्मा	१५१
(५) सोमशर्मा	१५२
१३-तृष्णासे मानवता मर जाती है	१५३
१४-सुनीथाकी कथा (ला० बि० मि०)	१५३
१५-सीता-शुकी-संवाद (मो० ला० आ०)	१५६
१६-सत्कर्ममें श्रमदानका अद्भुत फल (ला० बि० मि०)	१५८
३-विष्णुपुराण—	१५९
१-स्त्री, शूद्र और कलियुगकी महत्ता (रा०प०सिं०)	१६०
२-धन्य कौन ?	१६२
३-प्रतिशोधका त्याग (स्वा० ओं० आ०)	१६३
४(क) शिवपुराण—	१६४
१-नारदजीका कामविजय-विषयक अभिमान-भङ्ग	१६७
२-नल-दमयन्तीके पूर्वजन्मका वृत्तान्त	१६८
३-अभिमानी रावणकी शिव-भक्ति (म०प्र०गो०)	१६९
४-किरातवेषधारी शिवजीकी अर्जुनपर कृपा	१७०
५-गुणनिधिपर भगवान् शिवकी कृपा (म०प्र०गो०)	१७१
६-महान् तीर्थ—माता-पिता	१७२
(ख) वायुपुराण—	१७४
१-पुराणवक्ता सूतजी (ला०बि०मि०)	१७५
२-परमात्मरूप शिव	१७५
३-लोकहितके लिये विषपान (ला०बि०मि०)	१७६
४-कुवलाश्वके द्वारा जगत्की रक्षा	१७७
५-भक्तका अद्भुत अवदान (ला०बि०मि०)	१७८
६-ब्रह्मवेत्ता याज्ञवल्क्य	१७८
७-जहाँ मन, वहीं हम	१७९
८-चरणारविन्दोंकी महिमा	१८०
५-भागवत—	
(क) श्रीमद्भागवतपुराण—	
१-महर्षि सौभरिकी जीवन-गाथा (पद्मभूषण आचार्य श्रीबलदेवजी उपाध्याय)	१८१
२-द्रौपदीकी क्षमाशीलता (स्वा० ओं० आ०)	१८५
३-पिबत भागवतं रसम् (आलयम्) (ला०वि०मि०)	१८६
४-भगवान्का अवतार महान् ज्ञानीमें रसोल्लासके लिये	१८७
५-श्रीमद्भागवतमें सापेक्षवादका उदाहरण	१८८
६-कुसंग परमार्थका बाधक (ला०वि०मि०)	१८८
७-दुःख-दर्दकी माँग (ला०वि०मि०)	१८९
८-भगवन्नाम समस्त पापोंको भस्म कर देता है	१९०
९-कथा-श्रवणसे भगवत्प्राप्ति	१९१
(ख) देवीभागवतपुराण—	
१-सत्यव्रत भक्त उतथ्य (ह० कृ० दु०)	१९२
२-सुदर्शनपर जगदम्बाकी कृपा	१९५

विषय	पृष्ठ-संख्या
३-तुलसी (का० ना० मे०)	१९६
४-मुनिवर गौतमद्वारा कृतघ्न ब्राह्मणोंको शाप .	१९९
६-नारदपुराण—	२०१
१-देवर्षि नारद	२०३
२-भगवान् विष्णुकी आराधना एवं एकादशी-व्रतकी महिमा (ह० कृ० दु०)	२०६
३-सत्संग एवं भगवान्‌के चरणोदककी महिमा (ह० कृ० दु०)	२०८
४-कुसङ्गका दुष्परिणाम एवं एकादशी-व्रतकी महिमा	२१०
५-पुण्यसलिला भगवती गङ्गा (ह० कृ० दु०)	२११
६-वेदमालिको भगवत्प्राप्ति	२१३
७-मार्कण्डेयपुराण—	
१-राजा खनित्रका सद्भाव (म० प्र० गो०)	२१५
२-राजा राज्यवर्धनको भास्करदेवका वरदान (म० प्र० गो०)	२१७
३-विपुलस्वान् मुनि और उनके पुत्रोंकी कथा (म० प्र० गो०)	२१८
४-राजा विदूरथकी कथा (म० प्र० गो०)	२२१
५-श्रीदुर्गासप्तशतीकी संक्षिप्त कथा	२२३
८-अग्निपुराण—	२२७
१-जडभरत और सौवीर-नरेशका संवाद	२२८
२-भगवान् विष्णुका स्वरूप और उनकी प्राप्तिके उपाय	२३१
९-भविष्यपुराण—	२३२
१-पुराण सुनने-सुनानेका फल	२३३
२-भगवान् सूर्यका परिवार	२३३
३-भगवान् भास्करकी आराधनाका अद्भुत फल ...	२३४
४-कर्तव्यपरायणताका अद्भुत आदर्श	२३६
१०-ब्रह्मवैवर्तपुराण—	२३७
१-श्रीनारदजीका अभिमान-भङ्ग	२३९
२-गरुड, सुदर्शनचक्र और श्रीकृष्णकी रानियोंका गर्व-भङ्ग	२४०
३-इन्द्रका गर्व-भङ्ग	२४१
४-ब्रह्माजीका दर्पभङ्ग	२४२
५-गणेशजीपर शनिकी दृष्टि	२४३
६-पृथ्वी किनके भारसे पीड़ित रहती है ?	२४४
११-लिङ्गपुराण—	२४५
१-भक्तिके वश भगवान् (ला० बि० मि०)	२४६
२-ज्योतिर्लिङ्गका प्राकट्य	२४६
३-भक्तिसे सर्वातिशायी सामर्थ्य (ला० बि० मि०) ...	२४७
४-रुद्रावतार नन्दीश्वर (ला० बि० मि०)	२४८
५-महर्षि वसिष्ठकी क्षमाशीलता	२४९
६-आँख खोलनेवाली गाथा	२५०
७-संगीतसे भगवत्प्राप्ति	२५१
८-भगवद्गानमें रोड़ा न अटकावे (ला० बि० मि०) ..	२५२
९-दरिद्रा कहाँ-कहाँ रहती है ?	२५३
१०-द्वादशाक्षर-मन्त्रकी महिमा (ला० बि० मि०) ...	२५४
११-विश्वासकी विजय	२५५
१२-परा एवं अपरा विद्याके ज्ञानसे मोक्षकी प्राप्ति	२५६
१२-वराहपुराण—	२५७
१-श्रीवराहावतार-कथा	२५८
२-भगवान् नारायणकी सर्वव्यापकता	२६०
३-नारायण-मन्त्रकी महिमा	२६१
४-कर्म-रहस्य	२६३
५-दशावतारोंकी उद्भव-तिथियाँ	२६४
६-गणेशजीकी उत्पत्तिका प्रसङ्ग और चतुर्थी-तिथिका माहात्म्य	२६५
७-कीर्तन-फल (स्वा० ओं० आ०)	२६६
८-मङ्गल-कामना एवं शान्ति-पाठ	२६७
१३-स्कन्दपुराण—	२६८
१-दीर्घायुष्य एवं मोक्षके हेतुभूत भगवान् शंकरकी आराधना	२६९
२-शबर-दम्पतिकी दृढ़ निष्ठा	२७०
३-सदाचारसे कल्याण	२७१
४-कीड़ेसे महर्षि मैत्रेय	२७२
५-नन्दभद्र (ह० कृ० दु०)	२७४
६-भारतके कुमारिकाखण्डकी कथा (जा०ना०श०) ..	२७६
७-भोला भक्त विष्णुदास और चक्रवर्ती सम्राट् चोल (ब० दा० वि०)	२७८
१४-वामनपुराण—	२८०
१-श्रीवामनावतार-कथा	२८१
२-भक्ति बड़ी है या शक्ति ?	२८५
३-वामनपुराणमें वाराणसी (आ० प्र०)	२८६
४-सुदर्शनचक्रकी कथा (आ० प्र०)	२८७
५-बलिद्वारा भगवान् वामनका संस्तवन	२८८
१५-कूर्मपुराण—	२८९
१-श्रीकूर्मावतार-कथा	२९०
२-मानव-जीवनकी चरितार्थता मोक्ष-प्राप्तिमें (ला० बि० मि०)	२९१
३-आसक्तिसे विजेता भी पराजित (ला० बि० मि०) ..	२९२

विषय	पृष्ठ-संख्या
४-जयध्वजकी विष्णुभक्ति (म० प्र० गो०)	२९३
५-शङ्कुकर्णसे शङ्कुकर्णेश्वर (,,)	२९४
१६-मत्स्यपुराण—	२९५
१-श्रीमत्स्यावतारकी कथा	२९६
२-श्राद्धकर्मकी महिमा	२९७
३-अविमुक्त-क्षेत्रमें शिवार्चन एवं तपःकर्मसे यक्षको गणेशत्वप्राप्ति	२९९
४-लवणाचल-दानकी महिमा	३०१
५-मदनद्वादशीव्रतका अद्भुत प्रभाव	३०१
१७-गरुडपुराण—	३०३
१-गया-श्राद्धसे प्रेतत्व-मुक्ति (ला० बि० मि०) ..	३०५
२-सोमपुत्री जाम्बवती (,,)	३०५
३-और्ध्वदैहिक दानका महत्त्व (र० दे० मि०) ..	३०६
४-प्रेतकल्पकी कथा (शि० पु०)	३०७
५-सर्वोपरि साधना—वाक्-संयम (स्वा० ओं० आ०)	३११
१८-ब्रह्माण्डपुराण—	३१२
१-चोरीकी चोरी	३१३
२-आदिशक्ति ललिताम्बा	३१४
३-भगवान् श्रीरामकी कथाएँ अति प्रिय थीं ...	३१५
विविध पौराणिक कथाएँ—	
५१-चौबीस अवतारोंकी कथाएँ—	
१-श्रीसनकादि	३१६
२-भगवान् नर-नारायण	३१८
३-भगवान् यज्ञ	३२०
४-ऋषभदेवके अवतारकी कथा	३२१
५-आदिराज पृथुकी अवतार-कथा	३२२
६-धन्वन्तरिके अवतारकी कथा	३२३
७-श्रीमोहिनी	३२५
८-भगवान् हयग्रीव	३२६
९-वामनावतारकी कथा (आ० प्र०)	३२८
१०-गजेन्द्रोद्धारक भगवान् श्रीहरि	३२९
११-परशुरामावतारकी कथा	३३१
१२-भगवान् व्यास	३३३
१३-भगवान् श्रीहंस	३३६
१४-श्रीरामावतारकी कथा	३३७
१५-श्रीकृष्णावतारकी कथा	३३८
१६-भगवान् बुद्ध	३४०
५२-मन्वन्तरके आख्यान—	३४१
१-स्वायम्भुव मनुकी कथा	३४३
२-स्वारोचिष मनुकी कथा	३४४
३-औत्तम मनुकी कथा (म० प्र० गो०)	३४७
४-तामस मनुकी कथा	३५०
५-रैवत मनुकी कथा (म० प्र० गो०)	३५१
६-चाक्षुष मनुकी कथा (,,)	३५३
७-वैवस्वत मनुकी कथा (,,)	३५४
८-सावर्णि मनुकी कथा	३५६
९-दक्षसावर्णि मनुकी कथा	३५७
१०-ब्रह्मसावर्णि मनुकी कथा	३५८
११-धर्मसावर्णि मनुकी कथा	३५८
१२-रुद्रसावर्णि मनुकी कथा	३५८
१३-रौच्य मनुकी कथा (म० प्र० गो०)	३५८
१४-भौत्य मनुकी कथा	३५९
५३-द्वादश ज्योतिर्लिङ्गोंके आख्यान—	
१-सोमनाथ (जा० ना० श०)	३६०
२-मल्लिकार्जुन	३६१
३-महाकालेश्वर (जा० ना० श०)	३६२
४-परमेश्वर (ओंकारेश्वर)	३६२
५-केदारेश्वर	३६३
६-भीमशंकर (जा० ना० श०)	३६३
७-विश्वेश्वर (,,)	३६४
८-त्र्यम्बकेश्वर (,,)	३६४
९-वैद्यनाथेश्वर (,,)	३६६
१०-नागेश (,,)	३६६
११-श्रीरामेश्वर (,,)	३६७
१२-घुश्मेश्वर (,,)	३६७
५४-छब्बीस एकादशियोंकी कथाएँ—	
१-अगहन मासकी एकादशियोंकी महिमा (ला० बि० मि०)	३६८
२-पौषमासकी एकादशियोंकी महिमा (ला०वि०मि०)	३६९
३-माघमासकी एकादशियोंकी महिमा (,,)	३७०
४-फाल्गुनमासकी एकादशियोंकी महिमा	३७१
५-चैत्रमासकी एकादशियोंकी महिमा (ला०वि०मि०)	३७१
५५-अद्भुत याचना	३७२
५६-बिना दान दिये परलोकमें भोजन नहीं मिलता ..	३७३
५७-दानका स्वरूप (स्वा० ओं० आ०)	३७३
५८-पाँच महातीर्थ	३७६
१-पितृतीर्थ	३७६
२-पतितीर्थ	३७६

विषय	पृष्ठ-संख्या
३-समतातीर्थ	३७६
४-अद्रोहतीर्थ	३७७
५-भक्तितीर्थ	३७७
५९-पञ्चगङ्गा-माहात्म्य	३७८
६०-उत्कलदेशके पुरुषोत्तम-क्षेत्रकी महिमा	३७९
६१-गौओंको घास खिलानेसे श्राद्ध-फल	३७९
६२-कार्तिकमासका माहात्म्य	३८०
(१) कार्तिकमें भगवान् और वेदका जलमें निवास	३८०
(२) कार्तिक-व्रतके पुण्यदानसे एक राक्षसीका उद्धार	३८१
६३-माघमासका माहात्म्य	३८२
(१) माघमासके पुण्यदानसे चार प्राणियोंका उद्धार	३८२
(२) माघ-स्नानसे दिव्यलोककी प्राप्ति (ला० बि० मि०)	३८३
६४-ब्रह्मचर्यके आदर्श—	
१-श्रीहनुमान्‌जी	३८४
२-उत्तङ्क	३८४
६५-दानधर्मके आदर्श—	
१-दैत्यराज विरोचन	३८५
२-महादानी कर्ण	३८६
३-दानधर्मकी महिमा	३८७
६६-देवी षष्ठीकी कथा	३८८
६७-नागपञ्चमी-व्रत-माहात्म्य (शि० पू० पा०)	३९०
६८-उत्तम पति प्राप्त करनेका साधनस्वरूप व्रत	३९२
६९-उपपुराण एवं उनके रोचक आख्यान —	
१-गणेशपुराण—	३९३
१-सच्ची निष्ठाका फल	३९४
२-नृपश्रेष्ठ वरेण्यपर भगवान् गजाननकी कृपा (ह० कृ०दु०)	३९५
२-नरसिंहपुराण—	३९७
१-नृसिंहावतार-कथा	३९८
२-एकमात्र कर्तव्य क्या है ?	४००
३-कल्किपुराण—	४०२
१-कल्कि-अवतारकी कथा	४०३
४-एकाम्रपुराण—	४०५
१-भगवान् श्रीरामका एकाम्रक्षेत्रीय अश्वमेध-यज्ञ	४०७
५-कपिलपुराण—	
१-जगन्नाथ-क्षेत्र	४०९
२-कपिलावतारकी कथा	४१०
६-दत्तपुराण—	४१३
१-भगवान् दत्तात्रेयकी अवतार-कथा	४१४
७-श्रीविष्णुधर्मोत्तरपुराण—	४१५
१-भरतद्वारा शैलूषवंशी गन्धर्वोंका उत्सादन	४१७
८-मुद्गलपुराण—	४१९
१-सक्तुप्रस्थीय मौद्गल्योपाख्यान	४२०
७०-पुराणोंके प्रासङ्गिक चरित्र—	
१-अगस्त्य	४२३
२-अजामिल	४२३
३-अदिति	४२४
४-अन्धतापस	४२४
५-अम्बरीष	४२४
६-अश्विनीकुमार	४२५
७-अहल्या-गौतम	४२५
८-कद्रू	४२५
९-गङ्गा और भगीरथ	४२६
१०-गज	४२६
११-गणिका	४२६
१२-गरुड	४२७
१३-गालव	४२७
१४-चन्द्रमा	४२७
१५-चित्रकेतु	४२८
१६-तपस्विनी	४२८
१७-त्रिशंकु	४२८
१८-दक्ष प्रजापति	४२९
१९-दधीचि	४२९
२०-नल-नील	४३०
२१-नहुष	४३०
२२-मकरी और कालनेमि	४३०
२३-मार्कण्डेय	४३०
२४-ययाति	४३१
२५-रन्तिदेव	४३१
२६-राहु-केतु	४३२
२७-विराध	४३२
२८-वसिष्ठ	४३२
२९-विश्वामित्र	४३२
३०-शृङ्गी	४३३
३१-शिबि	४३३
७१-पौराणिक कथाओंका तात्पर्य—भगवत्प्राप्ति — (डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्०ए०, पी०-एच्०डी०)	४३४

विषय पृष्ठ-संख्या

७२-मुक्तिका सहज उपाय ४३४
७३-पुराणोंका परम प्रयोजन—श्रेय और प्रेयकी प्राप्ति (आचार्य डॉ० श्रीजयमन्तजी मिश्र) ४३५
७४-नम्र निवेदन और क्षमा-प्रार्थना ४३६

चित्र-सूची

(बहुरंगे चित्र)

१-पुराणोंके आदिवक्ता चतुर्मुख भगवान् ब्रह्मा ..... आवरण-पृष्ठ
२-पुराणपुरुषोत्तम भगवान् विष्णु १
३-नवग्रह-उपासना ७९
४-महामति गणेशकी मातृ-पितृ-भक्ति १५०
५-यज्ञमूर्ति भगवान् अग्निदेव २२७
६-देवों तथा ऋषिगणोंको भगवान् वराहके दिव्य दर्शन २५७
७-भगवान् विष्णु वामन-रूपमें २८१
८-भगवान्‌के चौबीस अवतार ३१६
९-भगवान्‌के चौबीस अवतार ३४०
१०-मङ्गलमूर्ति भगवान् गणपति ३९३
११-भक्त प्रह्लादपर भगवान् नरसिंहका अनुग्रह ३९७
१२-भगवान् व्यासका पुराण-प्रवचन ४२३

इकरंगे (सादे चित्र)

१-माता पार्वतीके द्वारा ग्राहसे बालककी रक्षा १३४
२-कपोत दम्पतिद्वारा व्याधका विलक्षण आतिथ्य .. १३६
३-भगीरथद्वारा गङ्गाकी स्तुति १३७
४-नन्दा गायकी धर्मनिष्ठासे व्याघ्रका उद्धार १४३
५-सप्तर्षियोंके मध्यमें स्थित बालक मार्कण्डेयको ब्रह्माजीद्वारा दीर्घायु होनेका वर-प्रदान १४६
६-ब्रह्माजीका पतिव्रता शैव्यासे सूर्योदयके लिये निवेदन करना १४९
७-शिवशर्माद्वारा कोढ़ी माता-पिताके चरणोंमें प्रणाम .. १५२
८-गन्धर्वकुमारको कोड़ोंसे पीटनेपर सुनीथाका शापका भागी बनना १५४
९-सीताका अपनी सखियोंसे तोतेका जोड़ा पकड़ लानेके लिये कहना १५६
१०-मुनियोंके पूछनेपर व्यासजीका उन्हें स्त्री, शूद्र तथा कलियुगकी महत्ता बतलाना १६०
११-मोहभङ्ग होनेपर नारदजीका प्रभु-चरणोंमें पड़ना .. १६८
१२-धनुर्धारी अर्जुनपर भगवान् शङ्करका अनुग्रह ... १७०
१३-गुणनिधिका शिवमन्दिरमें नैवेद्य चुरानेकी इच्छासे प्रवेश १७२
१४-अन्तःपुरमें मान्धाताकी कन्याओंद्वारा सौभरिका वरण.. १८४
१५-धर्मराजका अपने दूतोंको भगवद्भक्तोंका माहात्म्य बतलाना १९१
१६-सत्यव्रती उतथ्यका व्याधको समझाना १९४
१७-सुबाहु और सुदर्शनके द्वारा भगवती दुर्गाका स्तवन .. १९६
१८-ब्रह्माजीद्वारा शङ्खचूड तथा तुलसीको दाम्पत्य-सूत्रमें बँधनेका आदेश १९७
१९-भगवान्‌का प्रकट होकर परम वैष्णव राजा रुक्माङ्गदको पुत्र-हत्यासे रोकना २०८
२०-महर्षि उत्तङ्कके धर्मोपदेशसे गुलिक व्याधका उद्धार .. २०९
२१-मुनिवर जानन्तिका वेदमालिको ज्ञानोपदेश देना ... २१४
२२-महर्षि वसिष्ठसे ब्राह्मणोंकी मृत्युका समाचार सुनकर राजा खनित्रके मनमें निर्वेद होना २१६
२३-भगवान् सूर्यका राज्यवर्धनकी प्रजाको वरदान देना .. २१८
२४-मुनिवर शमीककी आज्ञासे मुनिकुमारोंका पक्षिशावकोंको आश्रमपर लाना २१९
२५-वत्सप्रीका आलिङ्गन करनेके लिये राजा विदूरथका सिंहासनसे उतरना २२२
२६-जडभरतका सौवीर-नरेशकी पालकी ढोना २२८
२७-देवर्षि नारदका राग-रागिनियोंके साथ संवाद २३९
२८-गरुड एवं सुदर्शनचक्रको काँखमें दबाये श्रीहनुमान्‌जीका सीता-रामके रूपमें राधा-माधवका दर्शन करना २४०
२९-शनिकी दृष्टि पड़नेसे पार्वतीकी गोदमें स्थित बालक गणेशका सिर कटना २४३
३०-महर्षि लोमशद्वारा राजा इन्द्रद्युम्नको शिवभक्तिका उपदेश २६९
३१-शिवयोगी ऋषभद्वारा रानी सुमति तथा उसके पुत्र भद्रायुको सदाचारका उपदेश २७१
३२-सत्यव्रतकी नन्दभद्रको सन्मार्गसे च्युत करनेकी असफल चेष्टा २७५
३३-कुमारीको दर्पणमें बकरीका मुख देखकर अपने पूर्वजन्मका स्मरण हो जाना २७७
३४-रोटी चुराकर भागते हुए चाण्डालके पीछे करुणहृदय विष्णुदासका घी देनेके लिये दौड़ना २७९
३५-ब्रह्मचारी हनुमान्‌जीका रावणके अन्तःपुरमें माता सीताकी खोज ३८४
३६-उत्तङ्कका पातालसे कुण्डल लाकर गुरुपत्नीको प्रदान करना ३८५
३७-दैत्यराज विरोचनका ब्राह्मणरूपधारी देवराज इन्द्रको अपना सिर काटकर दान करना ३८६
३८-महर्षि अगस्त्यद्वारा श्रीरामको दिव्य आभूषण-प्रदान ३८७

विषय	पृष्ठ-संख्या
३९-विप्रवर पुण्डरीकको देवर्षि नारदद्वारा भक्तिका उपदेश	४००
४०-पुण्डरीकको गरुडारूढ नारायणके दर्शन	४०१
४१-पुत्रका अपना भी सत्तूभाग अतिथि ब्राह्मणको देनेके लिये पितासे निवेदन	४२१
४२-महाराज युधिष्ठिरके अश्वमेध यज्ञमें एक अर्धस्वर्णिम-शरीर नेवलेका आगमन	४२२
४३-महर्षि अगस्त्य	४२३
४४-भक्तराज अम्बरीष	४२४
४५-राजा चित्रकेतु	४२८
४६-महर्षि दधीचि	४२९
४७-मुनिवर मार्कण्डेय	४३०
४८-महान् दानी रन्तिदेव	४३१
४९-महर्षि वसिष्ठ	४३२
५०-महर्षि विश्वामित्र	४३२
५१-राजा शिबि	४३३

गीताप्रेस, गोरखपुरद्वारा प्रकाशित महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ

परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाकृत कुछ जीवनोपयोगी पुस्तकें

शिक्षाप्रद पत्र
रामायणके आदर्श पात्र
महाभारतके आदर्श पात्र
तत्त्व-चिन्तामणि भाग १
" भाग २
" भाग ३
" भाग ४
" भाग ५
" भाग ६
" भाग ७
मनुष्यका परम कर्तव्य
कर्मयोगका तत्त्व
आत्मोद्धारके साधन
भक्तियोगका तत्त्व
परमशान्तिका मार्ग
ज्ञानयोगका तत्त्व
प्रेमयोगका तत्त्व
अध्यात्मविषयक पत्र
परमार्थ-पत्रावली भाग १
" भाग २
" भाग ३
" भाग ४
आदर्श भ्रातृ-प्रेम
बाल-शिक्षा
ब्रह्मचर्य और संध्या-गायत्री
नवधाभक्ति
आदर्श नारी सुशीला
श्रीमद्भगवद्गीताका तात्त्विक विवेचन
ध्यानावस्थामें प्रभुसे वार्तालाप
भारतीय शास्त्रोंमें नारी-धर्म
श्रीसीताके चरित्रसे आदर्श शिक्षा
भगवान् क्या है ?
भरतजीमें नवधा भक्ति
नारी-धर्म
सामयिक चेतावनी
सत्संगकी कुछ सार बातें
तीन आदर्श देवियाँ
गीतोक्त कर्मयोग, भक्तियोग और ज्ञानयोगका रहस्य
भगवत्प्राप्तिके विविध उपाय
प्रेमभक्ति-प्रकाश
संत-महिमा
वैराग्य
चेतावनी
सत्यकी शरणसे मुक्ति
भगवान्‌की दया
व्यापार-सुधारकी आवश्यकता
शोकनाशके उपाय
परलोक और पुनर्जन्म
अवतारका सिद्धान्त
ज्ञानयोगके अनुसार विविध साधन
कल्याण-प्राप्तिकी कई युक्तियाँ
धर्म क्या है ?
स्त्रियोंके लिये घरेलू प्रयोग
गीतोक्त सांख्ययोग और निष्काम कर्मयोग
हमारा कर्तव्य
प्रेमका सच्चा स्वरूप
ईश्वर दयालु और न्यायकारी है
तीर्थोंमें पालन करने योग्य उपयोगी बातें
त्यागसे भगवत्प्राप्ति
महात्मा किसे कहते हैं
श्रीमद्भगवद्गीताका प्रभाव
Gems of Truth Part I
" Part II
Sure Steps to God
What is God ?
What is Dharma ?

श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारद्वारा रचित तथा अनुवादित सत्साहित्य मँगायें

श्रीराधा-माधव-चिन्तन
पद-रत्नाकर
संत-वाणी
सुखी बननेके उपाय
मधुर
सत्संगके बिखरे मोती
भगवन्नाम-चिन्तन
भगवच्चर्चा भाग १
" भाग २
" भाग ३
" भाग ४
" भाग ५
" भाग ६
लोक-परलोक-सुधार भाग १
" भाग २
" भाग ३
" भाग ४
" भाग ५
व्यवहार और परमार्थ
भवरोगकी रामबाण दवा
उपनिषदोंके चौदह रत्न
साधन-पथ
कल्याण-कुंज भाग १
" भाग २
" भाग ३
दिव्य सुखकी सरिता
सफलताके शिखरकी सीढ़ियाँ
मानव-धर्म
श्रीभगवन्नाम
गोवध भारतका कलंक एवं गायका माहात्म्य
गोपी-प्रेम
ब्रह्मचर्य
आनन्दकी लहरें
मनको वशमें करनेके कुछ उपाय
भगवान् श्रीकृष्णकी कृपा
सिनेमा-मनोरंजन या विनाशका साधन
राधा-माधव-रस-सुधा-सटीक
विवाहमें दहेज

स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराजकी आत्मबोध करानेवाली पुस्तकें पढ़ें

गीता-साधक-संजीवनी
गीता-दर्पण
गीताकी राजविद्या
गीतामाधुर्य
गीताका ज्ञानयोग
गीताका भक्तियोग
गीताका आरम्भ
गीताकी विभूति और विश्वरूप-दर्शन
गीताकी सम्पत्ति और श्रद्धा
गीताका कर्मयोग-खण्ड २
गीताका ध्यानयोग
गीता-परिचय
गीताका सारभूत श्लोक
मानसमें नाम-वन्दना
जीवनोपयोगी प्रवचन
कल्याणकारी प्रवचन गुजराती
भगवत्प्राप्तिकी सुगमता
तात्त्विक प्रवचन
सत्संगकी विलक्षणता
वास्तविक सुख
जीवनका सत्य
साधकोंके प्रति
भगवन्नाम
कल्याणकारी प्रवचन प्रथम
" द्वितीय
स्वाधीन कैसे बनें
Benedictory Discourses
Let us know the truth
The Divine Name

विद्यार्थियों और बालकोंके लिये उपयोगी पुस्तकें

पिताकी सीख
बालकोंकी बातें
चोखी कहानियाँ
बड़ोंके जीवनसे शिक्षा
वीर बालक
गुरु और माता-पिताके भक्त बालक
सच्चे और ईमानदार बालक
बालकोंके कर्तव्य
दयालु और परोपकारी बालक-बालिकाएँ
वीर बालिकाएँ
पढ़ो, समझो और करो—
भाग १से १२तक
बालचित्रमय श्रीकृष्णलीला
भगवान् श्रीकृष्ण
भगवान् श्रीराम
बालचित्र रामायण
बालचित्रमय बुद्ध-लीला
बालचित्रमय चैतन्य-लीला
वर्तमान शिक्षा
आदर्श भ्रातृप्रेम
बालकके गुण
आओ बच्चों तुम्हें बतायें
बालशिक्षा
बालककी दिनचर्या
बालकोंकी सीख
बालकके आचरण
बाल-अमृत-वचन
भक्त बालक
बालकोंकी बोलचाल

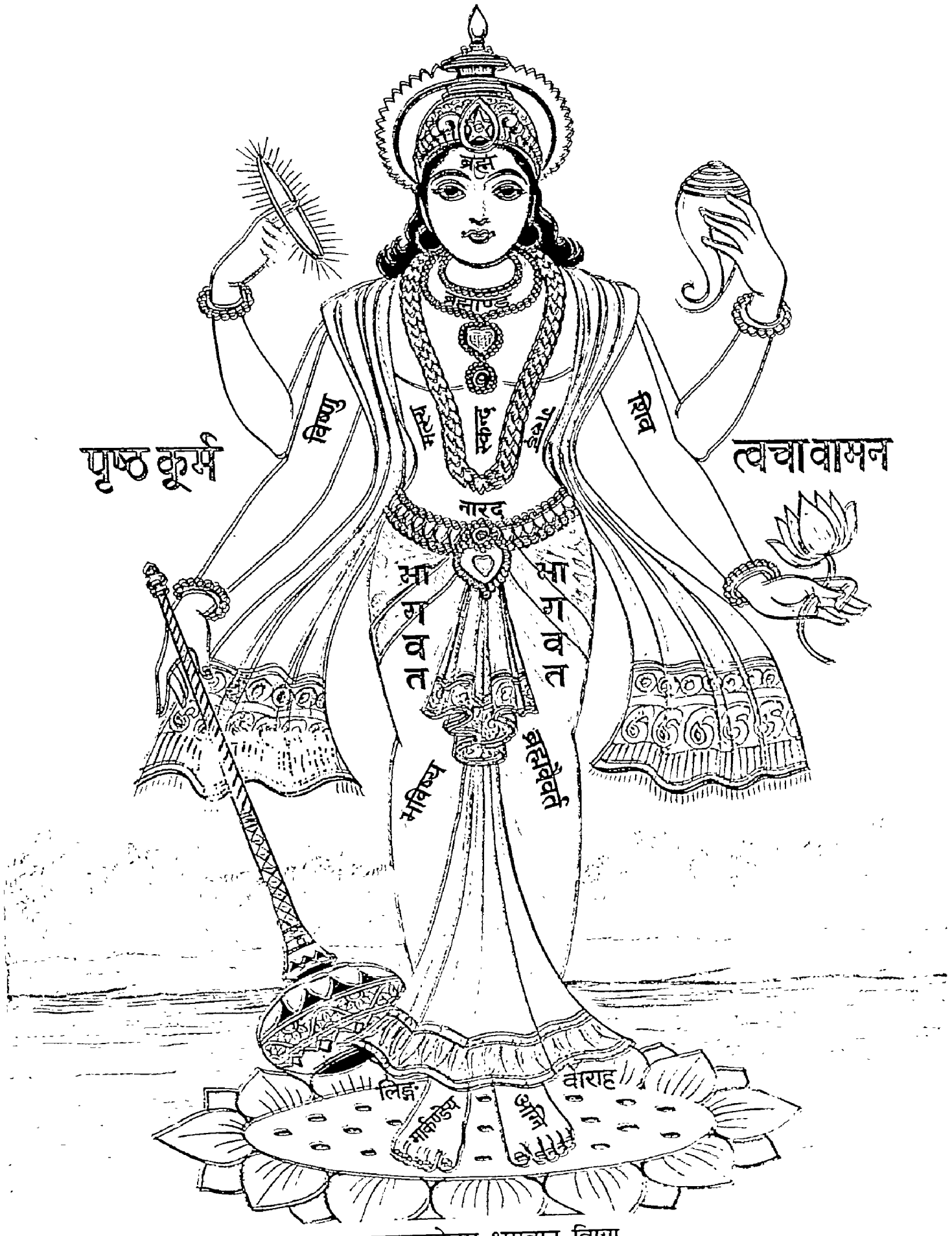

पुराणपुरुषोत्तम भगवान् विष्णु

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

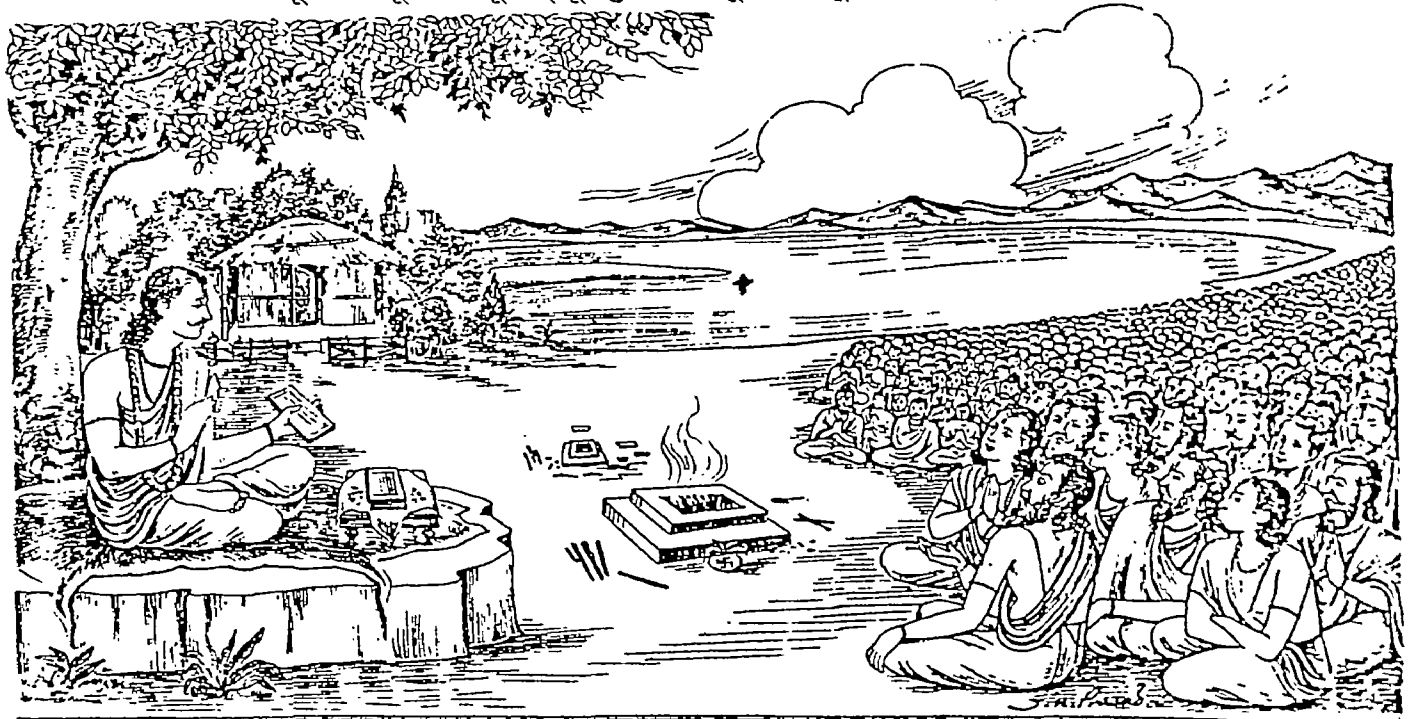

कल्याण

यशः शिवं सुश्रव आर्यसङ्गमे यदृच्छया चोपशृणोति ते सकृत्।
कथं गुणज्ञो विरमेद्विना पशुं श्रीर्यत्प्रवव्रे गुणसंग्रहेच्छया॥

वर्ष ६३ } गोरखपुर, सौर चैत्र, वि० सं० २०४६, श्रीकृष्ण-सं० ५२१५, अप्रैल १९८९ई० { संख्या १ / पूर्ण संख्या ७४६

पुराण-विग्रह भगवान् विष्णु

ब्राह्मं मूर्धा हरेरेव हृदयं पद्मसंज्ञकम्॥
वैष्णवं दक्षिणो बाहुः शैवं वामो महेशितुः। ऊरू भागवतं प्रोक्तं नाभिः स्यान्नारदीयकम्॥
मार्कण्डेयं च दक्षाङ्घ्रिर्वामो ह्याग्नेयमुच्यते। भविष्यं दक्षिणो जानुर्विष्णोरेव महात्मनः॥
ब्रह्मवैवर्तसंज्ञं तु वामजानुरुदाहृतः। लैङ्गं तु गुल्फकं दक्षं वाराहं वामगुल्फकम्॥
स्कान्दं पुराणं लोमानि त्वगस्य वामनं स्मृतम्। कौर्मं पृष्ठं समाख्यातं मात्स्यं मेदः प्रकीर्त्यते॥
मज्जा तु गारुडं प्रोक्तं ब्रह्माण्डमस्थि गीयते। एवमेवाभवद्विष्णुः पुराणावयवो हरिः॥

(पद्मपु०, स्व० ख० ६२। २—७)

'ब्रह्मपुराण भगवान् विष्णुका सिर, पद्मपुराण हृदय, विष्णुपुराण दक्षिणबाहु, शिवपुराण वामबाहु, भागवत जङ्घायुगल, नारदपुराण नाभि, मार्कण्डेयपुराण दक्षिण और अग्निपुराण वाम चरण है। भविष्य उनका दक्षिण जानु, ब्रह्मवैवर्त वाम जानु, लिङ्गपुराण दक्षिण गुल्फ (टँखना), वराहपुराण वाम गुल्फ, स्कन्दपुराण रोम, वामनपुराण त्वचा, कूर्मपुराण पीठ, मत्स्यपुराण मेद, गरुड मज्जा और ब्रह्माण्डपुराण अस्थि है। इस प्रकार भगवान् विष्णु पुराण-विग्रहके रूपमें प्रकट हुए हैं।

स्वस्त्ययन

स्वस्ति नो मिमीतामश्विना भगः स्वस्ति देव्यदितिरनर्वणः ।
स्वस्ति पूषा असुरो दधातु नः स्वस्ति द्यावापृथिवी सुचेतुना ॥

दोनों अश्विनीकुमार हम सबका कल्याण करें। सूर्यदेवता, अव्याहतगतिक पूषा देवता, शत्रुनाशक, प्राण एवं शक्तिको प्रदान करनेवाले असुर (वरुणदेव), अदितिदेवी तथा द्युलोक एवं पृथ्वीलोक हम सबका मङ्गल करें और हमें शोभन ज्ञानसे सम्पन्न करें।

स्वस्तये वायुमुप ब्रवामहै सोमं स्वस्ति भुवनस्य यस्पतिः ।
बृहस्पतिं सर्वगणं स्वस्तये स्वस्तय आदित्यासो भवन्तु नः ॥

हम वायुदेवता और लोकोंके पालक सोमदेवताकी स्तुति करते हैं तथा महान् कर्मों और ज्ञानके पालक बृहस्पति तथा सभी देवगणोंसे कल्याणके लिये प्रार्थना करते हैं। ये सभी देवता तथा द्वादश आदित्यगण हम सबका मङ्गल करें।

विश्वे देवा नो अद्या स्वस्तये वैश्वानरो वसुरग्निः स्वस्तये ।
देवा अवन्त्वृभवः स्वस्तये स्वस्ति नो रुद्रः पात्वंहसः ॥

सभी देवता शुभ कर्मोंको आरम्भ करते समय हमारा कल्याण करें। संसारके संचालक तथा सबके आश्रय वैश्वानर अग्निदेव हमारा कल्याण करें। ऋभु नामक देवगण पालन और भगवान् रुद्रदेव सभी पाप-तापोंसे हमारी रक्षा करें।

स्वस्ति मित्रावरुणा स्वस्ति पथ्ये रेवति ।
स्वस्ति न इन्द्रश्चाग्निश्च स्वस्ति नो अदिते कृधि ॥

हे अहोरात्रके आत्मस्वरूप मित्रावरुण देव ! आप हम सबका कल्याण करें। हे भूलोक एवं अन्तरिक्षलोकके मार्गमें कल्याण करनेवाली पथ्या देवि ! और उनके साथ चलनेवाली तथा धन प्रदान करनेवाली रेवती देवि ! आप हम लोगोंका सर्वत्र कल्याण करें। देवराज इन्द्रदेव एवं परम तेजस्वी अग्निदेव तथा देवमाता अदिति देवि ! आप सभी हम लोगोंका मङ्गल करें।

स्वस्ति पन्थामनु चरेम सूर्याचन्द्रमसाविव ।
पुनर्ददताघ्नता जानता सं गमेमहि ॥

जैसे सूर्य और चन्द्रमा निरालम्ब अन्तरिक्षमें निरापद एवं राक्षसादिसे अबाधित निर्विघ्न यात्रा करते हैं, विचरण करते हैं, वैसे ही हम भी अपने बन्धु-बान्धवोंके साथ लोक-यात्रामें स्नेहपूर्वक निर्विघ्न चलते रहें और हम सबका मार्ग मङ्गलमय हो।

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतम्
शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥

हे संसारके नेत्र-स्वरूप, देवताओंके हितचिन्तक, पूर्वदिशामें उदित होनेवाले निष्पाप तथा शुद्ध-बुद्ध, निरन्तर गतिशील सूर्यदेव ! आपके अनुग्रहसे हमलोग सौ वर्षोंतक जीते रहें। सौ वर्षोंतक हमारी अविकल दृष्टि-शक्ति एवं श्रवण-शक्ति बनी रहे। सौ वर्षोंतक सुस्पष्ट वाक्शक्ति बनी रहे और सौ वर्षोंतक हम सभी इन्द्रियोंसे सम्पूर्ण शक्तियुक्त होकर अदीन अर्थात् समृद्ध बने रहें और सौ वर्षसे भी अधिक समयतक समृद्धिशाली और सभी शक्तियोंसे सम्पन्न रहें।

ॐ शान्तिः ! ॐ शान्तिः !! ॐ शान्तिः !!!

विघ्नं ममापहर सिद्धिविनायक त्वम्

विघ्नेश विघ्नचयखण्डननामधेय श्रीशंकरात्मज सुराधिपवन्द्यपाद ।
दुर्गामहाव्रतफलाखिलमङ्गलात्मन् विघ्नं ममापहर सिद्धिविनायक त्वम् ॥
सत्पद्मरागमणिवर्णशरीरकान्तिः श्रीसिद्धिबुद्धिपरिचर्चितकुङ्कुमश्रीः ।
दक्षस्तने वलयितातिमनोज्ञशुण्डो विघ्नं ममापहर सिद्धिविनायक त्वम् ॥
पाशाङ्कुशाब्जपरशूंश्च दधच्चतुर्भिर्दोर्भिश्च शोणकुसुमस्रगुमाङ्गजातः ।
सिन्दूरशोभितललाटविधुप्रकाशो विघ्नं ममापहर सिद्धिविनायक त्वम् ॥
कार्येषु विघ्नचयभीतविरञ्चिमुख्यैः सम्पूजितः सुरवरैरपि मोदकाद्यैः ।
सर्वेषु च प्रथममेव सुरेषु पूज्यो विघ्नं ममापहर सिद्धिविनायक त्वम् ॥
शीघ्राञ्चनस्खलनतुङ्गरवोर्ध्वकण्ठ स्थूलेन्दुरुद्रगणहासितदेवसङ्घः ।
शूर्पश्रुतिश्च पृथुवर्तुलतुङ्गतुन्दो विघ्नं ममापहर सिद्धिविनायक त्वम् ॥
यज्ञोपवीतपदलम्भितनागराजो मासादिपुण्यददृशीकृतऋक्षराजः ।
भक्ताभयप्रद दयालय विघ्नराज विघ्नं ममापहर सिद्धिविनायक त्वम् ॥
सद्रत्नसारततिराजितसत्किरीटः कौसुम्भचारुवसनद्वय ऊर्जितश्रीः ।
सर्वत्र मङ्गलकरस्मरणप्रतापो विघ्नं ममापहर सिद्धिविनायक त्वम् ॥
देवान्तकाद्यसुरभीतसुरार्तिहर्ता विज्ञानबोधनवरेण तमोऽपहर्ता ।
आनन्दितत्रिभुवनेश कुमारबन्धो विघ्नं ममापहर सिद्धिविनायक त्वम् ॥ (मुद्गलपुराण)

हे विघ्नेश ! हे सिद्धिविनायक ! आपका नाम विघ्न-समूहका खण्डन करेवाला है । आप भगवान् शंकरके सुपुत्र हैं । देवराज इन्द्र आपके चरणोंकी वन्दना करते हैं । आप श्रीपार्वतीजीके महान् व्रतके उत्तम फल एवं निखिल मङ्गलरूप हैं । आप मेरे विघ्नका निवारण करें । सिद्धिविनायक ! आपके श्रीविग्रहकी कान्ति उत्तम पद्मरागमणिके समान अरुण वर्णकी है । श्रीसिद्धि और बुद्धि देवियोंने अनुलेपन करके आपके श्रीअङ्गोंमें कुङ्कुमकी शोभाका विस्तार किया है । आपके दाहिने स्तनपर वलयाकार मुड़ा हुआ शुण्ड-दण्ड अत्यन्त मनोहर जान पड़ता है । आप मेरे विघ्न हर लीजिये । सिद्धिविनायक ! आप अपने चार हाथोंमें क्रमशः पाश, अङ्कुश, कमल और परशु धारण करते हैं, लाल फूलोंकी मालासे अलंकृत हैं और उमाके अङ्गसे उत्पन्न हुए हैं तथा आपके सिन्दूरशोभित ललाटमें चन्द्रमाका प्रकाश फैल रहा है, आप मेरे विघ्नोंका अपहरण कीजिये । सभी कार्योंमें विघ्न-समूहके आ पड़नेकी आशङ्कासे भयभीत हुए ब्रह्मा आदि श्रेष्ठ देवताओंने भी आपकी मोदक आदि मिष्टान्नोंसे भलीभाँति पूजा की है । आप समस्त देवताओंमें सबसे पहले ही पूजनीय हैं । आप मेरे विघ्न-समूहका निवारण कीजिये । सिद्धिविनायक ! आप जल्दी-जल्दी चलने, लड़खड़ाने, उच्चस्वरसे शब्द करने, ऊर्ध्वकण्ठ, स्थूल शरीर होनेसे चन्द्र, रुद्रगण आदि समस्त देवसमुदायको हँसाते रहते हैं । आपके कान सूपके समान जान पड़ते हैं, आप मोटा गोलाकार और ऊँचा तुन्द (तोंद) धारण करते हैं । आप मेरे विघ्नोंका अपहरण कीजिये । आपने नागराजको यज्ञोपवीतका स्थान दे रखा है, आप बालचन्द्रको मस्तकपर धारणकर दर्शनार्थियोंको पुण्य प्रदान करते हैं । भक्तोंको अभय देनेवाले दयाधाम विघ्नराज ! सिद्धिविनायक ! आप मेरे विघ्नोंको हर लीजिये । आपका सुन्दर किरीट उत्तम रत्नोंके सार भागोंकी श्रेणियोंसे उद्दीप्त होता है । आप कुसुम्भी रंगके दो मनोहर वस्त्र धारण करते हैं, आपकी शोभा—कान्ति बहुत बढ़ी-चढ़ी है और सर्वत्र आपके स्मरणका प्रताप सबका मङ्गल करनेवाला है । सिद्धिविनायक ! आप मेरे विघ्न हर लें । सिद्धिविनायक ! आप देवान्तक आदि असुरोंसे डरे हुए देवताओंकी पीडा दूर करनेवाले तथा विज्ञानबोधके वरदानसे सबके अज्ञानान्धकारको हर लेनेवाले हैं । त्रिभुवनपति इन्द्रको आनन्दित करनेवाले कुमारबन्धो ! आप मेरे विघ्नोंका निवारण कीजिये ।

नमः सवित्रे

जयति किरणमाली भासुरः सप्तसप्तिसकलभुवनधामा प्राग्दिगन्ताट्टहासः ।
भवति विगतपापं कीर्तनादेव यस्य प्रचुरकलुषदोषैर्ग्रस्तमङ्गं नराणाम् ॥
उद्यन्तमम्बरतले सुरसिद्धसङ्घाः सब्रह्मदैत्यमुनिकिन्नरनागयक्षाः ।
त्वामर्चयन्ति विबुधाः प्रणतैः शिरोभिश्चञ्चत्किरीटमणिभाभिरनुत्तमाभिः ॥
प्राग्दिग्वधूतिलक भासुरकर्णपूर मन्दाकिनीदयितनाथ जगत्प्रदीप ।
हेमाद्रितापन नभस्तलहाररत्न सन्ध्याङ्गनावदनराग नमो नमस्ते ॥
ब्रह्मण्य सत्य शुभ मङ्गललोकनाथ व्योमाम्बुजेश मुनिसंस्तुत विश्वमूर्ते ।
आर्तस्य शोकहर किङ्करपालकश्च त्वं मे प्रसीद भगवञ्छरणागतस्य ॥
नमः सवित्रे जगदेकचक्षुषे जगत्प्रसूतिस्थितिनाशहेतवे ।
त्रयीमयाय त्रिगुणात्मधारिणे विरञ्चिनारायणशङ्करात्मने ॥

(स्कन्द०, अवन्ती०, अ० ४३)

किरणोंकी मालासे मण्डित, अत्यन्त प्रकाशमान एवं सात घोड़ोंके रथपर चलनेवाले उन भगवान् सूर्यकी जय हो, जिनका तेज समस्त भुवनोंमें व्याप्त है, जो पूर्व दिशाके अट्टहासकी-सी छवि धारण करते हैं तथा जिनके नामोंका कीर्तन करनेमात्रसे प्रचुर पाप-तापमय दोषोंसे ग्रस्त हुए मनुष्योंके अङ्ग निष्पाप हो जाते है। भगवन्! जिस समय आप आकाशमें उदित होते हैं, उस समय देवताओं और सिद्धोंके समुदाय, ब्रह्मा आदि देवेश्वर, दैत्य, मुनि, किन्नर, नाग, यक्ष तथा ज्ञानी देवगण अपने झुके हुए मस्तकोंद्वारा चमकती हुई मुकुटमणियोंकी उत्तम प्रभावोंसे आपकी अर्चना करते हैं। हे वधूरूपिणी प्राची दिशाके भाल-तिलक! देदीप्यमान कर्णपूर धारण करनेवाले मन्दाकिनीके प्रियतम नाथ! सुमेरु पर्वतको प्रकाशित करनेवाले! आकाशके महान् हाररत्न! अङ्गनारूपी सन्ध्याके मुखको रञ्जित करनेवाले! जगत्प्रदीप! आपको बारंबार नमस्कार है। हे ब्रह्मण्य! सत्य! शुभ! मङ्गल! लोकनाथ! आकाशकमल! ईश! मुनि-संस्तुत! विश्वमूर्ते! आर्तजनोंका शोक नाश करनेवाले! सेवकोंका पालन करनेवाले! भगवन्! मैं आपकी शरणमें आया हूँ मुझपर प्रसन्न होइये। जो सम्पूर्ण जगत्के एकमात्र नेत्र हैं, वेदत्रयीमय हैं अथवा त्रिभुवन-स्वरूप हैं, त्रिगुणात्मक शरीर धारण करनेवाले हैं और समस्त विश्वकी उत्पत्ति, पालन तथा संहारके हेतु हैं, उन ब्रह्मा, विष्णु, शिवरूप भगवान् सूर्यको मेरा नमस्कार है।

सुभद्रश्रवसे नमो नमः

यत्कीर्तनं यत्स्मरणं यदीक्षणं यद्वन्दनं यच्छ्रवणं यदर्हणम्।
लोकस्य सद्यो विधुनोति कल्मषं तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः ॥
तपस्विनो दानपरा यशस्विनो मनस्विनो मन्त्रविदः सुमङ्गलाः ।
क्षेमं न विन्दन्ति विना यदर्पणं तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः ॥ (श्रीमद्भा० २।४।१५, १७)

जिन मङ्गलमय भगवान्के मङ्गलमयी कीर्तिका श्रवण सभी प्रकारके मङ्गलोंका विस्तार करता है, जिनका कीर्तन, स्मरण, दर्शन, वन्दन और पूजन जीवोंके पापोंको तत्काल नष्ट कर देता है, उन पुण्यकीर्ति भगवान् पुराण-पुरुष श्रीविष्णुको बारंबार नमस्कार है। बड़े-बड़े तपस्वी, दानी, यशस्वी, मनस्वी, सदाचारी और मन्त्रवेत्ता जबतक अपनी साधनाओंको तथा अपने-आपको उनके (भगवान्के) चरणोंमें समर्पित नहीं कर देते, तबतक उन्हें कल्याणकी प्राप्ति नहीं होती, जिनके प्रति आत्मसमर्पणकी ऐसी महिमा है, उन कल्याणमयी कीर्तिवाले भगवान् पुराण-पुरुष श्रीविष्णुको बारंबार नमस्कार है।

तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि

कृत्स्नस्य योऽस्य जगतः सचराचरस्य कर्ता कृतस्य च तथा सुखदुःखदाता ।
संसारहेतुरपि यः पुनरन्तकालस्तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि ॥
यं योगिनो विगतमोहतमोरजस्का भक्त्यैकतानमनसो विनिवृत्तकामाः ।
ध्यायन्ति चाखिलधियोऽमितदिव्यमूर्तिं तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि ॥
यश्चन्द्रखण्डममलं विलसन्मयूखं बद्ध्वा सदा सुरधुनीं शिरसा बिभर्ति ।
वामाङ्गके विधृतवान् गिरिराजपुत्रीं तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि ॥
यः सिद्धचारणनिषेवितपादपद्मो गङ्गां महोर्मिविषमां गगनात् पतन्तीम् ।
मूर्ध्ना दधे स्रजमिव त्रिजगत्पुनन्तीं तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि ॥
कैलासगोत्रशिखरे परिकम्पमाने कैलासशृङ्गसदृशेन दशाननेन ।
यः पादपद्मपरिपीडनसेव्यमानस्तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि ॥
ब्रह्मेन्द्रविष्णुमरुतां च सषण्मुखानां योऽदाद्वरान् सुबहुशो भगवान् महेशः ।
श्वेतं च मृत्युवदनात् पुनरुज्जहार तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि ॥
आराधितस्तु तपसा हिमवन्निकुञ्जे धूम्रावृतेन तपसाऽपि परैरगम्यः ।
सञ्जीविनीं समददाद् भृगवे महात्मा तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि ॥

(स्कन्दपुराण, अवन्तीखण्ड०, अ० ४९)

'जो इस सम्पूर्ण चराचर-जगत्के कर्ता और इसे अपने किये हुए कर्मोंके अनुसार सुख-दुःख देनेवाले हैं, जो संसारकी उत्पत्तिके हेतु तथा उसका अन्तकाल भी स्वयं ही हैं, सबको शरण देनेवाले उन्हीं भगवान् शंकरकी मैं शरण लेता हूँ। जिनके मोह, तमोगुण और रजोगुण दूर हो गये हैं, वे योगीजन, भक्तिसे मनको एकाग्र रखनेवाले निष्काम भक्त तथा अपरिच्छिन्न बुद्धिवाले ज्ञानी भी जिनका निरन्तर ध्यान करते हैं, उन अनन्त दिव्यस्वरूप शरणदाता भगवान् शंकरकी मैं शरण लेता हूँ। जो सुशोभित किरणोंवाले निर्मल अर्धचन्द्रका मुकुट बाँधकर सदा अपने मस्तकपर गङ्गाजीको धारण करते हैं और जिन्होंने अपने वामाङ्गभागमें गिरिराजकिशोरी उमाको धारण कर रखा है, उन शरणदाता भगवान् शंकरकी मैं शरण लेता हूँ। सिद्ध और चारण जिनके चरणारविन्दोंकी सेवा करते रहते हैं और जिन्होंने आकाशसे ऊँची-ऊँची उत्ताल तरङ्गोंके साथ विषम वेगसे गिरती हुई त्रिभुवनपावनी गङ्गाको अपने मस्तकपर पुष्पमालाकी भाँति धारण कर लिया था, उन शरणदाता भगवान् शंकरकी मैं शरण लेता हूँ। जिसके भारसे कैलासपर्वतका शिखर हिलने लगता था, कैलास-शृङ्गके सदृश ही उस विशालकाय दशाननने भी जिनके युगल चरणारविन्दोंकी सेवा की है, उन शरणदाता भगवान् शंकरकी मैं शरण लेता हूँ। जिन्होंने ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, मरुद्गण और कार्त्तिकेयको अनेक बार बहुत-से वर प्रदान किये तथा अपने भक्त महामुनि श्वेतको मृत्युके मुखसे निकाल लिया था[१], उन शरणदाता भगवान् शंकरकी मैं शरण लेता हूँ। आचार्य शुक्रने हिमालयपर्वतके निकुञ्जोंमें अग्निसे समुत्थित धुएँसे आवृत होकर, उसका पान कर, अन्य किसीसे भी असाध्य तपद्वारा भगवान् शंकरकी आराधना की। इससे प्रसन्न होकर जिन महान् आत्मा महादेवने उन्हें संजीवनी-विद्या प्रदान कर दी[२], उन शरणदाता भगवान् शंकरकी मैं शरण लेता हूँ।

१-महामुनि श्वेतकी यह कथा लिङ्गपुराण पूर्वखण्ड अ० ३० में विस्तारपूर्वक प्राप्त होती है।
२-यह कथा मत्स्यपुराण अ० ४७ श्लोक ८२ से १२२ तकमें प्राप्त होती है।

नमामि ते रूपमिदं भवानि !

आद्यं महान्तं पुरुषाभिधानं प्रकृत्यवस्थं त्रिगुणात्मबीजम्। ऐश्वर्यविज्ञानविरोधधर्मैः समन्वितं देवि नतोऽस्मि रूपम्॥
सर्वाश्रयं सर्वजगद्विधानं सर्वत्रगं जन्मविनाशहीनम्। सूक्ष्मं विचित्रं त्रिगुणं प्रधानं नतोऽस्मि ते रूपमरूपभेदम्॥
यदेव पश्यन्ति जगत्प्रसूतिं वेदान्तविज्ञानविनिश्चितार्थाः। आनन्दमात्रं प्रणवाभिधानं तदेव रूपं शरणं प्रपद्ये॥
सहस्रमूर्धानमनन्तशक्तिं सहस्रबाहुं पुरुषं पुराणम्। शयानमन्तःसलिले तवैव नारायणाख्यं प्रणतोऽस्मि रूपम्॥
प्रहीणशोकं प्रविहीनरूपं सुरासुरैरर्चितपादपद्मम्। सुकोमलं देवि विभासि शुभ्रं नमामि ते रूपमिदं भवानि॥
नमस्तेऽस्तु महादेवि नमस्ते परमेश्वरि। नमो भगवतीशानि शिवायै ते नमो नमः॥

(कूर्मपु०, पूर्वा०, अ० १२)

हे देवि ! आपका जो रूप आद्य, महापुरुषसंज्ञक प्रधान प्रकृति-अवस्थावाला, सत्त्व-रज आदि तीनों गुणोंका बीजभूत और ऐश्वर्य, विज्ञान एवं अनेक परस्पर विरुद्ध धर्म तथा गुणोंका आश्रय है, मैं उसे प्रणाम करता हूँ। देवि ! जो आपका रूप समस्त संसारका आश्रय, विश्व-विधाता, सर्वत्रगामी, जन्म-जरा-मृत्युसे रहित, अतिसूक्ष्म, विचित्र, त्रिगुणमय, प्रधान तथा निर्गुण एवं सगुण-स्वरूप है, मैं उसे नमस्कार करता हूँ। वेदान्त एवं विज्ञानशास्त्रके द्वारा सुनिश्चित निर्णय-प्राप्त ऋषिगण, जगत्को उत्पन्न करनेवाले आनन्दमात्र आपके जिस ओंकारस्वरूपका सदा ध्यान करते हैं, हम उसकी शरण ग्रहण करते हैं, सहस्र मस्तक, सहस्र भुजा एवं अनन्त शक्तियोंको धारण करनेवाले अन्तःसमुद्रशायी पुराणपुरुष भगवान् नारायण भी आपके ही रूप हैं, मैं आपके उस रूपको प्रणाम करता हूँ। हे भवानी देवि ! तुम निर्गुण-निराकार होती हुई भी सम्पूर्ण शोक-मोहसे शून्य, देवता एवं असुरोंद्वारा अर्चित, सुकोमल चरणकमलवाली, गौरीरूपमें प्रकाशित हो रही हो, मैं तुम्हारी वन्दना करता हूँ। हे षडैश्वर्यसम्पन्न परमेश्वरि महादेवि ! आपको प्रणाम है। समस्त संसारपर शासन करनेवाली हे भगवती शाङ्करि ! मेरा आपको बारंबार नमस्कार है।

वेदव्यासं सर्वदाहं नमामि

पाराशर्यं परमपुरुषं विश्ववेदैकयोनिं
विद्याधारं विमलमनसं वेदवेदान्तवेद्यम्।
शश्वच्छान्तं शमितविषयं शुद्धबुद्धिं विशालं
वेदव्यासं विमलयशसं सर्वदाहं नमामि॥

(पद्म०, उ० खं० २१९।४२)

महर्षि पराशरके पुत्र, परम पुरुष, सम्पूर्ण वैदिक शाखाओंके उत्पत्तिके स्थान, सम्पूर्ण विद्याओंके आधार, निर्मल मनवाले, वेद-वेदान्तोंके द्वारा परिज्ञेय, सदा शान्त, रागशून्य, विशाल विशुद्ध-बुद्धि तथा निर्मल यशवाले महात्मा वेदव्यासजीको मैं सर्वदा नमस्कार करता हूँ।

जयति पराशरसूनुः सत्यवतीहृदयनन्दनो व्यासः।
यस्यास्यकमलगलितं वाङ्मयममृतं जगत् पिबति॥

(वायु० १।१।२)

श्रीपराशरजीके पुत्र, सत्यवतीके हृदयको आनन्दित करनेवाले उन भगवान् व्यासकी जय हो, जिनके मुखकमलसे निःसृत शास्त्ररूपी सुधाधाराका संसार पान करता है।

न तेऽस्त्यविदितं किंचित् त्रिषु लोकेषु वै प्रभो॥
सर्वज्ञत्वं महाभाग देवेष्विव बृहस्पतिः।
नमस्यामो महाप्राज्ञं ब्रह्मिष्ठं त्वां महामुनिम्॥
येन त्वया तु वेदार्था भारते प्रकटीकृताः।
कः शक्नोति गुणान् वक्तुं तव सर्वान् महामुने॥
अधीत्य चतुरो वेदान् साङ्गान् व्याकरणानि च।
कृतवान् भारतं शास्त्रं तस्मै ज्ञानात्मने नमः॥
नमोऽस्तु ते व्यास विशालबुद्धे
फुल्लारविन्दायतपत्रनेत्र।
येन त्वया भारततैलपूर्णः
प्रज्वालितो ज्ञानमयः प्रदीपः॥

(ब्रह्म० २५।३-११)

(मुनिगण बोले—) महाभाग भगवान् व्यासजी ! आप देवताओंमें बृहस्पतिकी भाँति सर्वज्ञ हैं। आपको हमलोग

लोकोंकी कोई भी वस्तु अज्ञात नहीं है, आपने सम्पूर्ण वेदोंके अर्थको महाभारतमें प्रकाशित किया है तथा आप महामुनि, महाप्राज्ञ एवं ब्रह्मवेत्ता हैं, हम आपको प्रणाम करते हैं। महामुने ! आपके गुणोंका वर्णन करनेमें कौन समर्थ हो सकता है ? आपने अङ्गोंसहित चारों वेदों और उनके भाष्योंको अच्छी तरह पढ़कर महाभारतशास्त्रकी रचना की है। ज्ञानस्वरूप आपको हम प्रणाम करते हैं। आपके नेत्र प्रफुल्लित कमलके समान विशाल हैं। आपने महाभारतरूपी तेलसे भरे हुए ज्ञानपूर्ण दीपकको प्रज्वलित किया है। हे विशाल बुद्धिवाले व्यासजी ! आपको हमारा प्रणाम है।

नमस्तस्मै मुनीशाय तपोनिष्ठाय धीमते।
वीतरागाय कवये व्यासायामिततेजसे॥
तं नमामि महेशानं मुनिं धर्मविदां वरम्।
श्यामं जटाकलापेन शोभमानं शुभाननम्॥
मुनीन् सूर्यप्रभान् धर्मान् पाठयन्तं सुवर्चसम्।
नानापुराणकर्तारं वेदव्यासं महाप्रभम्॥

(बृहद्धर्मपुराण १।१।२३-२५)

जो तपोनिष्ठ, मुनीश्वर, अमिततेजस्वी, महाकवि, रागसे सर्वथा शून्य तथा अत्यन्त निर्मल बुद्धिसे संयुक्त एवं महामुनि शिवस्वरूप, श्यामवर्णके हैं, जिनका मुखमण्डल जटाजूटसे सुशोभित है और जो धर्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ हैं तथा सूर्यके समान प्रभावाले मुनियोंको धर्मशास्त्रोंका पाठ पढ़ानेवाले हैं, ज्योतिर्मय हैं, अत्यन्त कान्तिमान् हैं, सभी पुराणों तथा उपपुराणोंके रचयिता हैं, उन व्यास भगवान्‌को बारंबार नमस्कार है।

व्याससूनुं नतोऽस्मि

[शुक-वन्दना]

यं प्रव्रजन्तमनुपेतमपेतकृत्यं
द्वैपायनो विरहकातर आजुहाव।
पुत्रेति तन्मयतया तरवोऽभिनेदु-
स्तं सर्वभूतहृदयं मुनिमानतोऽस्मि॥

'जिस समय श्रीशुकदेवजीका यज्ञोपवीत-संस्कार भी नहीं हुआ था, सुतरां लौकिक-वैदिक कर्मोंके अनुष्ठानका अवसर भी नहीं आया था, उन्हें अकेले ही संन्यास लेनेके उद्देश्यसे जाते देखकर उनके पिता व्यासजी विरहसे कातर होकर पुकारने लगे—'बेटा ! बेटा !' उस समय तन्मय होनेके कारण श्रीशुकदेवजीकी ओरसे वृक्षोंने उत्तर दिया। ऐसे सबके हृदयमें विराजमान श्रीशुकदेवमुनिको मैं नमस्कार करता हूँ।'

स्वसुखनिभृतचेतास्तदव्युदस्तान्यभावो-
ऽप्यजितरुचिरलीलाकृष्टसारस्तदीयम्।
व्यतनुत कृपया यस्तत्त्वदीपं पुराणं
तमखिलवृजिनघ्नं व्याससूनुं नतोऽस्मि॥

'श्रीशुकदेवजी महाराज अपने आत्मानन्दमें ही निमग्न थे। इस अखण्ड अद्वैत स्थितिसे उनकी भेद-दृष्टि सर्वथा निवृत्त हो चुकी थी। फिर भी मुरलीमनोहर श्यामसुन्दरकी मधुमयी, मङ्गलमयी, मनोहारिणी लीलाओंने उनकी वृत्तियोंको अपनी ओर आकर्षित कर लिया और उन्होंने जगत्‌के प्राणियोंपर कृपा करके भगवत्तत्त्वको प्रकाशित करनेवाले इस महापुराणका विस्तार किया। मैं उन्हीं सर्वपापहारी व्यासनन्दन भगवान् श्रीशुकदेवजीके चरणोंमें नमस्कार करता हूँ।'

योगीन्द्राय नमस्तस्मै शुकाय ब्रह्मरूपिणे।
संसारसर्पदष्टं यो विष्णुरातममूमुचत्॥

(श्रीमद्भागवत १२।१३।२१)

'हम उन योगिराज ब्रह्मस्वरूप श्रीशुकदेवजीको नमस्कार करते हैं, जिन्होंने श्रीमद्भागवत महापुराण सुनाकर संसार-सर्पसे डसे हुए राजर्षि परीक्षितको मुक्त किया।'

पुराण-महिमा

ये पठन्ति पुराणानि शृण्वन्ति च समाहिताः ।
प्रत्यक्षरं लभन्त्येते कपिलादानजं फलम् ॥
अपुत्रो लभते पुत्रं धनार्थी लभते धनम् ।
विद्यार्थी लभते विद्यां मोक्षार्थी मोक्षमाप्नुयात् ॥
ये शृण्वन्ति पुराणानि कोटिजन्मार्जितं खलु ।
पापजालं तु ते हित्वा गच्छन्ति हरिमन्दिरम् ॥

(पद्म०, ब्रह्मखण्ड २५ । २९-३१)

जो मानव समाहितचित्त होकर पुराणोंका पठन और श्रवण करते हैं, उन्हें प्रत्येक अक्षरपर कपिला गायके दानका फल प्राप्त होता है। पुत्रहीनको पुत्र, धनार्थीको धन, विद्यार्थीको विद्या तथा मोक्षार्थीको मोक्ष प्राप्त होता है तथा पुराण-श्रोताके कोटि-जन्मकृत पाप-जाल नष्ट हो जाते हैं और वे भगवद्धामको प्राप्त करते हैं।

यथा पापानि पूयन्ते गङ्गावारिविगाहनात् ।
तथा पुराणश्रवणाद् दुरितानां विनाशनम् ॥

(वामनपु० ६९ । २)

जिस प्रकार गङ्गाजलमें स्नान करनेसे सारे पाप नष्ट हो जाते हैं, उसी प्रकार पुराणका श्रवण करनेसे समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं।

यज्ञकर्मक्रियावेदः स्मृतिर्वेदो गृहाश्रमे ॥
स्मृतिर्वेदः क्रियावेदः पुराणेषु प्रतिष्ठितः ।
पुराणपुरुषाज्जातं यथेदं जगदद्भुतम् ॥
तथेदं वाङ्मयं जातं पुराणेभ्यो न संशयः ।
न वेदे ग्रहसंचारो न शुद्धिः कालबोधिनी ।
तिथिवृद्धिक्षयो वापि पर्वग्रहविनिर्णयः ॥
इतिहासपुराणैस्तु निश्चयोऽयं कृतः पुरा ।
यत्र दृष्टं हि वेदेषु तत्सर्वं लक्ष्यते स्मृतौ ॥
उभयोर्यत्र दृष्टं हि तत्पुराणैः प्रगीयते ।

(नारं० पु०, उ०, अ० २४)

यज्ञ एवं कर्मकाण्डके लिये वेद प्रमाण हैं। गृहस्थोंके लिये स्मृतियाँ ही प्रमाण हैं। किंतु वेद और स्मृतिशास्त्र (धर्मशास्त्र) दोनों ही सम्यक् रूपसे पुराणोंमें प्रतिष्ठित हैं। जैसे पुरुष परमात्मासे यह अद्भुत जगत् उत्पन्न हुआ है, वैसे ही सम्पूर्ण संसारका वाङ्मय—साहित्य पुराणोंसे ही उत्पन्न है, इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है। वेदोंमें तिथि, नक्षत्र आदि काल-निर्णायक और ग्रह-संचारकी कोई युक्ति नहीं बतायी गयी है। तिथियोंकी वृद्धि, क्षय, पर्व, ग्रहण आदिका निर्णय भी उनमें नहीं है। यह निर्णय सर्वप्रथम इतिहास-पुराणोंके द्वारा ही निश्चित किया गया है। जो बातें वेदोंमें नहीं हैं, वे सब स्मृतियोंमें हैं और जो बातें इन दोनोंमें नहीं मिलतीं, वे पुराणोंके द्वारा ज्ञात होती हैं।

श्रुतिस्मृती तु नेत्रे द्वे पुराणं हृदयं स्मृतम् ।
श्रुतिस्मृतिभ्यां हीनोऽन्धः काणः स्यादेकया विना ॥
पुराणहीनाद्धृच्छून्यात् काणान्धावपि तौ वरौ ।
श्रुतिस्मृत्युदितो धर्मः पुराणे परिगीयते ॥
यस्य धर्मेऽस्ति जिज्ञासा यस्य पापाद्भयं महत् ।
श्रोतव्यानि पुराणानि धर्ममूलानि तेन वै ॥
चतुर्दशसु विद्यासु पुराणं दीप उत्तमः ।
अन्धोऽपि न तदालोकात् संसाराब्धौ क्वचित् पतेत् ॥

(स्क० का० २ । ९६-९७, ९९-१००)

विद्वानोंके श्रुति-स्मृति—ये दो नेत्र हैं और पुराण हृदय हैं। इनमेंसे जिसे श्रुति-स्मृतिमेंसे किसी एकका ज्ञान नहीं है वह काना, दोनोंके ज्ञानसे हीन अन्धा है, किंतु जो पुराणरूपी विद्यासे हीन है वह तो हृदयहीन या शून्य होनेके कारण इन दोनोंसे भी निकृष्ट है। श्रुति तथा स्मृतियोंमें कहा गया धर्म पुराणमें प्रतिपादित है। जिसकी धर्ममें जिज्ञासा या रुचि हो, जो पापोंसे डरता हो, उसे पुराणोंका श्रवण करना चाहिये, क्योंकि वे ही धर्मके मूल हैं। चौदहों विद्याओंमें पुराण विद्या ही उत्तम दीपक है। इसके आलोक-प्रकाशमें स्थित अन्धा भी संसार-सागरमें कभी नहीं गिरता।

ब्राह्मणं च पुरस्कृत्य ब्राह्मणेन च कीर्तितम् ।
पुराणं शृणुयान्नित्यं महापापदवानलम् ॥
पुराणं सर्वतीर्थेषु तीर्थं चाधिकमुच्यते ।
यस्यैकपादश्रवणाद्धरिरेव प्रसीदति ॥
यथा सूर्यवपुर्भूत्वा प्रकाशाय चरेद्धरिः ।
सर्वेषां जगतामेव हरिरालोकहेतवे ॥

तथैवान्तःप्रकाशाय पुराणावयवो हरिः ।
विचरेदिह भूतेषु पुराणं पावनं परम् ॥
तस्माद्यदि हरेः प्रीतेरुत्पादे धीयते मतिः ।
श्रोतव्यमनिशं पुम्भिः पुराणं कृष्णरूपिणः ॥
विष्णुभक्तेन शान्तेन श्रोतव्यमतिदुर्लभम् ।
पुराणाख्यानममलममलीकरणं परम् ॥
यस्मिन् वेदार्थमाहृत्य हरिणा व्यासरूपिणा ।
पुराणं निर्मितं विप्र तस्मात् तत्परमो भवेत् ॥
पुराणे निश्चितो धर्मो धर्मश्च केशवः स्वयम् ।
तस्मात् कृती पुराणे हि श्रुते विष्णुर्भवेदिति ॥
साक्षात् स्वयं हरिर्विप्रः पुराणं च तथाविधम् ।
एतयोः सङ्गमासाद्य हरिरेव भवेन्नरः ॥

(पद्मपु०, स्वर्गख० ६२ । ५८—६६)

ब्राह्मणके साक्ष्यमें ब्राह्मणके मुखसे कहे हुए पुराणका प्रतिदिन श्रवण करना चाहिये। पुराण महापापोंके वनको जलानेके लिये दावानलके समान है। अतः पुराणोंको समस्त तीर्थोंमें श्रेष्ठ तीर्थ बतलाया गया है। पुराण-ग्रन्थोंके एक पाद (चतुर्थांश) के श्रवणसे ही श्रीहरि प्रसन्न हो जाते हैं। जैसे भगवान् विष्णु सम्पूर्ण जगत्को प्रकाश तथा देखनेकी शक्ति प्रदान करनेके लिये सूर्यका शरीर धारण करके आकाशमें विचरते हैं, उसी प्रकार पुराणस्वरूप श्रीहरि सम्पूर्ण भूतोंके अन्तःकरणमें ज्ञानका प्रकाश करनेके लिये इस जगत्में विचरते हैं। पुराण सबसे बढ़कर पवित्रताका साधन है, अतः यदि भगवान्को प्रसन्न करनेका मनमें संकल्प हो तो प्रत्येक पुरुषको निरन्तर श्रीविष्णुके अङ्गभूत पुराणका श्रवण करना चाहिये। पुराणकी कथा अत्यन्त दुर्लभ और स्वरूपसे ही निर्मल है तथा अन्तःकरणको निर्मल बनानेका सबसे उत्कृष्ट साधन है। अतः विष्णुभक्त पुरुषको शान्तभावसे इसका श्रवण करना चाहिये। ब्रह्मन्! व्यासरूपी भगवान् श्रीहरिने वेदार्थका संग्रह करके पुराणकी रचना की है, इसलिये उसके श्रवण और अध्ययनमें तत्पर रहना चाहिये। पुराणमें धर्मके स्वरूपका निश्चय किया गया है और धर्म साक्षात् श्रीविष्णुका विग्रह है। अतः विद्वान् पुरुष पुराण-श्रवण करके विष्णुरूप ही हो जाता है। ब्राह्मण स्वयं श्रीहरिका स्वरूप है और पुराण भी ऐसा ही माना गया है। इन दोनोंका सङ्ग पाकर मनुष्य नरसे नारायण हो जाता है।

जगद्यथा निरालोकं जायतेऽशशिभास्करम् ।
विना तथा पुराणं ह्यध्येयमस्मान्मुने सदा ॥
अश्वमेधसहस्रस्य यत्फलं समुदाहृतं ।
तत्फलं समवाप्नोति देवाग्रे यो जपं चरेत् ॥
विशेषतः कलौ व्यास पुराणश्रवणादृते ।
परो धर्मो न पुंसां हि मुक्तिध्यानपरः स्मृतः ॥
या गतिः पुण्यशीलानां यज्वनां च तपस्विनाम् ।
सा गतिः सहसा तात पुराणश्रवणात् खलु ॥
ज्ञानावाप्तिर्यदा न स्याद्योगशास्त्राणि यत्नतः ।
अध्येतव्यानि पौराणं शास्त्रं श्रोतव्यमेव च ॥
पापं संक्षीयते नित्यं धर्मश्चैव विवर्धते ।
पुराणश्रवणाज्ज्ञानी न संसारं प्रपद्यते ॥
अतएव पुराणानि श्रोतव्यानि प्रयत्नतः ।
धर्मार्थकामलाभाय मोक्षमार्गाप्तये तथा ॥
यज्ञैर्दानैस्तपोभिस्तु यत्फलं तीर्थसेवया ।
तत्फलं समवाप्नोति पुराणश्रवणान्नरः ॥

अन्यो न दृष्टः सुखदो हि मार्गः
पुराणमार्गो हि सदा वरिष्ठः ।
शास्त्रं विना सर्वमिदं न भाति
सूर्येण हीना इव जीवलोकाः ॥

(शिवपु०, उमासंहिता, अ० १३)

(सनत्कुमारने भगवान् व्यासदेवसे कहा कि मुने!) जिस प्रकार चन्द्रमा और सूर्यके बिना सारा संसार अन्धकारमय हो जाता है अर्थात् अन्धेके समान कुछ भी नहीं देख पाता, उसी प्रकार मनुष्य पुराणके बिना अज्ञानान्धकारमें पड़ा रहता है, अतः हे व्यासदेव! सर्वदा इनका स्वाध्याय करना चाहिये। जो मनुष्य पुराणोंका भगवान्के सामने पाठ करता है, वह हजार अश्वमेध-यज्ञोंका जो फल कहा गया है उसे प्राप्त कर लेता है। विशेषतः कलियुगमें पुराणश्रवणको छोड़कर पुरुषके लिये सिद्धि और मोक्ष प्रदान करनेवाला कोई और धर्म—उपाय नहीं है। जो पुण्यशीलों, यज्ञकर्ताओं और तपस्वियोंकी गति कही गयी है वही गति पुराण-श्रोताओंको बड़ी सरलतासे अनायास ही प्राप्त हो जाती है। मनुष्यको यदि योगादि शास्त्रों, अन्य मार्गों या साधनोंसे ज्ञानकी प्राप्ति न हो तो पुराणोंका प्रयत्नपूर्वक श्रवण

तथा अध्ययन करना चाहिये। पुराणोंके श्रवणसे सारे पापोंका क्षय होता है, धर्मकी अभिवृद्धि होती है और मनुष्य ज्ञानी होकर संसारमें पुनर्जन्म नहीं लेता। इसलिये अत्यन्त प्रयत्नसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी प्राप्तिके लिये पुराणोंका श्रद्धासे श्रवण करना चाहिये। यज्ञ, दान, तपस्या और तीर्थोंकी सेवासे जो फल प्राप्त होता है, वही फल पुराणोंके श्रवणसे अनायास प्राप्त हो जाता है। पुराण-मार्ग सर्वदा सर्वश्रेष्ठ रहा है। दूसरा कोई भी मार्ग सुखद नहीं देखा गया। जैसे सूर्यके बिना समस्त जीवलोक प्रकाशित नहीं होता, वैसे ही पुराणशास्त्रके बिना यह सब कुछ अज्ञानान्धकारमें डूबा-सा रहता है।

कीर्तनीयः सदा हरिः

यस्मिन् न्यस्तमतिर्न याति नरकं स्वर्गोऽपि यच्चिन्तने
विघ्नो यत्र निवेशितात्ममनसो ब्राह्मोऽपि लोकोऽल्पकः।
मुक्तिं चेतसि यः स्थितोऽमलधियां पुंसां ददात्यव्ययः
किं चित्रं यदघं प्रयाति विलयं तत्राच्युते कीर्तिते॥
यज्ञैर्यज्ञविदो यजन्ति सततं यज्ञेश्वरं कर्मिणो
यं वै ब्रह्ममयं परावरमयं ध्यायन्ति च ज्ञानिनः।
यं संचिन्त्य न जायते न म्रियते नो वर्धते हीयते
नैवासन्न च सद्भवत्यति ततः किं वा हरेः श्रूयताम्॥
कव्यं यः पितृरूपधृग्विधिहुतं हव्यं च भुङ्क्ते विभु-
र्देवत्वे भगवाननादिनिधनः स्वाहास्वधासंज्ञिते।
यस्मिन् ब्रह्मणि सर्वशक्तिनिलये मानानि नो मानिनां
निष्ठायै प्रभवन्ति हन्ति कलुषं श्रोत्रं स यातो हरिः॥
नान्तोऽस्ति यस्य न च यस्य समुद्भवोऽस्ति वृद्धिर्न यस्य परिणामविवर्जितस्य।
नापक्षयं च समुपैत्यविकारि वस्तु यस्तं नतोऽस्मि पुरुषोत्तममीशमीड्यम्॥

(विष्णुपु०, अंश ६, अ० ८)

जिनमें चित्त लगानेवाला (व्यक्ति) कभी नरकमें नहीं जा सकता, जिनके स्मरणमें स्वर्ग भी विघ्नरूप है, जिनमें चित्त लग
र ब्रह्मलोक भी अति तुच्छ प्रतीत होता है तथा जो अव्यय प्रभु निर्मलचित्त पुरुषोंके हृदयमें स्थित होकर उन्हें मोक्ष देते
न अच्युतकी कथाओंका कीर्तन करनेसे यदि पाप विलीन हो जाते हैं तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? यज्ञवेत्ता कर्मनिष्ठ
यज्ञोंद्वारा जिनका यज्ञेश्वररूपसे यजन करते हैं, ज्ञानीजन जिनका परावरमय ब्रह्मस्वरूपसे ध्यान करते हैं, जिनका स्मरण
ने पुरुष न जन्मता है, न मरता है, न बढ़ता है और न क्षीण ही होता है तथा जो न सत् (कारण) हैं और न असत्
ी) ही हैं, उन श्रीहरिके (यशके) अतिरिक्त और क्या सुना जाय? जो अनादिनिधन भगवान् विभु पितृरूप धारणकर
र्वक श्राद्धमें विनियुक्त कव्यको स्वधा शब्दसे उच्चरित होकर ब्राह्मणरूपमें तथा अग्निमें विधिपूर्वक हवन किये हुए हव्यको
होकर स्वाहा शब्दोच्चारणद्वारा ग्रहण करते हैं और जिन समस्त शक्तियोंके आश्रयभूत स्वयंप्रकाश भगवान्के विषयमें
ड़े प्रमाणकुशल पुरुषोंके प्रमाण भी इयत्ता करनेमें समर्थ नहीं होते, वे श्रीहरि श्रवण-पथमें जाते ही समस्त पापोंको नष्ट
ते हैं। जिन ह्रास-विकासरहित प्रभुका न आदि है, न अन्त, न वृद्धि और न अपक्षय ही होता है, जो नित्य निर्विकार
हैं, उन स्तवनीय प्रभु पुरुषोत्तमको मैं नमस्कार करता हूँ।

प्रसाद-आशीर्वाद

पुराण

(अनन्तश्रीविभूषित ज्योतिष्पीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य श्रीमद्ब्रह्मानन्द सरस्वतीजी महाराजके उपदेशामृत)

पुराण भारतका सच्चा इतिहास है। पुराणोंसे ही भारतीय जीवनका आदर्श, भारतकी सभ्यता, संस्कृति तथा भारतके विद्या-वैभवके उत्कर्षका वास्तविक ज्ञान प्राप्त हो सकता है। प्राचीन भारतीयताकी झाँकी और प्राचीन समयमें भारतके सर्वविध उत्कर्षकी झलक यदि कहीं प्राप्त होती है तो पुराणोंमें। पुराण इस अकाट्य सत्यके द्योतक हैं कि भारत आदि-जगद्गुरु था और भारतीय ही प्राचीन कालमें आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक उन्नतिकी पराकाष्ठाको पहुँचे थे। पुराण न केवल इतिहास हैं, अपितु उनमें विश्व-कल्याणकारी त्रिविध उन्नतिका मार्ग भी प्रदर्शित किया गया है।

वेदोंकी महिमा अपार है, पर उनकी शब्दावलि दुर्बोध और प्रतिपादन-प्रक्रिया पर्याप्त जटिल है। उन्हें निरुक्त, ब्राह्मणग्रन्थ, श्रौतसूत्र तथा व्याकरण आदि अङ्गों, ऋषि, छन्द, देवता आदि अनुक्रमणी और भाष्योंके आधारपर बड़ी कठिनतासे ठीक-ठीक समझा जा सकता है। पर पुराण अकेले ही उनके समस्त अर्थोंको सरल शब्दोंमें और कथानकशैलीके सहारे सामान्य बुद्धिवाले पाठकोंको भी हृदयंगम करा देते हैं। इसीलिये सभी स्थानोंपर वेदोंको इतिहास, पुराणके द्वारा समझनेकी सम्मति दी गयी है। जो विद्वान् इतिहास-पुराणसे अनभिज्ञ हैं, उन्हें अल्पश्रुत, अल्पज्ञ कहकर वेदार्थ-प्रतिपादन-का अधिकार नहीं दिया गया है। वेद उनसे डरते हैं कि ये मेरा निश्चय रूपसे अनर्थ कर जनसमुदायमें उद्भ्रान्ति उत्पन्न करेंगे। इतिहास शब्दसे महाभारत तथा वाल्मीकि आदि रामायण एवं योगवासिष्ठादि ग्रन्थ भी अभिव्यक्त होते हैं। पुराण शब्दसे पद्म, स्कन्द आदि अठारह महापुराण, विष्णुधर्मोत्तरादि उपपुराण तथा नीलमत, एकाम्रादि स्थलपुराण भी गृहीत होते हैं। इन पुराणोंमें सभी विद्याओंका संग्रह हुआ है।

ज्ञानके भण्डार और धर्मके मूलस्रोत वेद हैं अवश्य, पर उनमें ग्रहोंका संचार, समयंकी शुद्धि, खर्वा, त्रिस्पृशा आदि विशिष्ट लक्षणोंसहित प्रतिपदासे पूर्णिमातककी कालबोधिनी तिथियोंका सुस्पष्ट निर्देश नहीं हुआ है, इसीलिये एकादशी, शिवरात्रि आदि व्रतोंका माहात्म्य, ग्रहण आदि विशिष्ट पर्वोंके कृत्य और दर्शन-शास्त्रोंके सूक्ष्मज्ञान तथा पाञ्चरात्र आदि विविध वैष्णव, शैव, शाक्तादि आगमोंके प्रतिपाद्य विषय स्पष्टरूपसे उपदिष्ट नहीं हैं, किंतु पुराणोंमें समस्त वेदार्थसहित ये सभी उपर्युक्त विषय, सभी वेदाङ्ग एवं धर्मशास्त्रोंके धर्म-कृत्य, देवोपासना-विधि, सदाचारके विस्तृत उपदेश और कथा उदाहरणसहित वेदान्त, सांख्य आदि प्रक्रियाओंको भी सबको हृदयंगम करानेका प्रयत्न किया गया है। इसलिये भारतीय संस्कृतिसे सम्बद्ध सम्पूर्ण ज्ञान-विज्ञान और कल्याणकारी क्रियाओंकी जानकारीके लिये ये ही चिरकालसे आश्रयणीय रहे हैं। इन पुराणोंसे ही पूर्वके विद्वानोंने अनेक सुन्दर निबन्ध एवं प्रबन्ध ग्रन्थोंकी रचना की है, जो दैनंदिन सभी कृत्योंसे लेकर यावज्जीवन होनेवाले विशेष प्रयोजन-युक्त कर्म, संस्कार तथा यज्ञादि अनुष्ठान, पर्व-महोत्सव आदिके भी निर्देशक हैं। कृष्णद्वैपायन भगवान् वेदव्यासने बड़े परिश्रमसे वेदोंको शाखा-प्रशाखा, ब्राह्मण, कल्पसूत्र, निरुक्त आदिकी प्रक्रियाओंमें विभाजन करके भी जब पूर्णलोकोपकारमें सफलता नहीं देखी, तब उन्होंने विशेष ध्यानस्थ होकर भागवतादि पुराणों, महाभारतादि इतिहासोंकी रचना कर वेदोंके गूढतम संदेशको जन-जनतक पहुँचानेका संकल्प किया। उन्हींकी भास्वती कृपासे समुद्भूत समग्र पुराण-राशि हमारे सामने उपस्थित होकर विश्वकल्याणमें निरन्तर प्रवृत्त है। यह पुराण-वाङ्मय सूक्ष्म विचार करनेपर वर्तमान समस्त विश्वसाहित्यकी अपेक्षा सभी प्रकार शुद्ध, सभ्यभाषायुक्त, सुबोध कथाओंसे समन्वित और मधुरतम पदविन्यासोंसे समलङ्कृत है। इस प्रकार यह पुराणसाहित्य सभीके हृदयको आकृष्ट कर कल्याण करनेके लिये नित्य-निरन्तर तत्पर है। विश्व-कल्याणके लिये श्रीभगवान् भारतीयोंको कल्याण-पथ-प्रदर्शक पुराणोंके प्रति आदर, श्रद्धा और भक्ति प्रदान करें, यही उनसे प्रार्थना है।

पुराणोंमें धर्म और सदाचार

(पूज्यपाद अनन्तश्री ब्रह्मलीन स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज)

व्यक्ति, समाज, राष्ट्र—किं बहुना अखिल विश्वके धारण, पोषण, संघटन, सामञ्जस्य एवं ऐकमत्यका सम्पादन करनेवाला एकमात्र पदार्थ है—धर्म। धर्मका सम्यग् ज्ञान अधिकारी व्यक्तिको अपौरुषेय वेद-वाक्यों एवं तदनुसारी पुराणादि आर्षधर्मग्रन्थोंद्वारा ही सम्पन्न होता है। सभी ैस्थितियोंमें सभी प्राणी धर्मका शुद्ध ज्ञान नहीं प्राप्त कर कते। राजर्षि मनुका कहना है कि सज्जन विद्वानोंद्वारा ही र्मका सम्यग् ज्ञान एवं आचरण हो सकता है। जिन नोंका अन्तःकरण राग-द्वेषसे कलुषित है, वे परिस्थिति-ात् धर्मके यथार्थ स्वरूपका अतिक्रमण कर सकते हैं, तः ऐसे सज्जन— जिनके अन्तःकरणमें कभी राग-द्वेषादिका ाव नहीं पड़ता, वे ही सही मानेमें धर्मका तत्त्व समझ सकते । किंतु उनका आचरण (कर्म) भी कभी-कभी किसी णसे धर्मका उल्लङ्घन कर सकता है, इसलिये ऐसे सज्जन द्वान् जिनका हृदय राग-द्वेषसे कभी कलुषित नहीं होता, वे यसे वेद-पुराणादिसम्मत जिस कर्मको धर्म मानते हैं, वे ही ली धर्म हैं। मनुका वचन इस प्रकार है—

विद्वद्भिः सेवितः सद्भिर्नित्यमद्वेषरागिभिः।
हृदयेनाभ्यनुज्ञातो यो धर्मस्तं निबोधत॥

(मनु० २।१)

इसके अनुसार उपर्युक्त सज्जनोंके आचरणको ही ाचार कहा जाता है—'**आचारप्रभवो धर्मः**' (महाभारत ु० पर्व १४९।३७)। यहाँ उसी सदाचार धर्मका कुछ ंशतः दिग्दर्शन कराया जा रहा है। मीमांसक ारिलभट्टके अनुसार वे धर्म या आचार भी वेद-णानुमोदित ही प्रशस्त होते हैं। सर्वत्र सभी देशोंकी परम्परा प्रशस्त नहीं होती, किंतु जहाँ अनादिकालसे वर्णाश्रम, धर्म आदि सभीका पालन होता आ रहा है, उसी देशकी ाचारकी परम्परा प्रशस्त मानी गयी है। इसीलिये भगवान् कहते हैं—

तस्मिन् देशे य आचारः पारम्पर्यक्रमागतः।
वर्णानां सान्तरालानां स सदाचार उच्यते॥

सरस्वती और दृषद्वती—इन देवनदियोंका अन्तराल (मध्यभाग) विशिष्ट देवताओंसे अधिष्ठित रहा, अतः यह देवनिर्मित देश 'ब्रह्मावर्त' कहा जाता है। यहाँ तथा आर्यावर्तमें उत्पन्न होनेवाले जनोंका अन्तःकरण पवित्र नदियोंके विशिष्ट जल पीनेके कारण अपने प्राचीन पितृ-पितामह, प्रपितामहादि-द्वारा अनुष्ठित आचारोंकी ओर ही उन्मुख होता है, अतः वर्णाश्रमधर्म तथा संकर जातियोंका धर्म यहाँके सभी निवासियोंमें यथावत् था। यहाँ उत्पन्न होनेपर भी जिन लोगोंका अन्तःकरण प्राचीन परम्पराप्राप्त धर्मकी ओर उन्मुख नहीं हुआ और वे लोग मनमानी नयी-नयी व्यवस्था करने लगें तो उनका भी आचार धर्ममें प्रमाण नहीं हो सकता, अतः परम्परा भी वही मान्य होगी, जो अनादि-अपौरुषेय वेद एवं तदनुसारी आर्ष-धर्मग्रन्थोंसे अनुमोदित, अनुप्राणित हो।

मनुष्योंको सदा ही सदाचारका पालन और दुराचारका परित्याग करना चाहिये। आचारहीन दुराचारी प्राणीका न इस लोकमें कल्याण होता है, न परलोकमें। असदाचारी प्राणियों-द्वारा अनुष्ठित यज्ञ, दान, तप—सभी व्यर्थ जाते हैं, कल्याणकारी नहीं होते। सदाचारके पालनसे अपने शरीरादिमें भी वर्तमान अलक्षण दूर होते हैं, अपना फल नहीं देते। सदाचाररूप वृक्ष चारों पुरुषार्थोंका देनेवाला है। धर्म ही उसकी जड़, अर्थ उसकी शाखा, काम (भोग) उसका पुष्प और मोक्ष उसका फल है—

धर्मोऽस्य मूलं धनमस्य शाखा
पुष्पं च कामः फलमस्य मोक्षः।

(वामनपुराण १४।१९)

यहाँ इस सदाचारके स्वरूपका कुछ वर्णन किया जाता है—सर्वप्रथम ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर भगवान् शंकरद्वारा उपदिष्ट प्रभात-मङ्गलका स्मरण करना चाहिये। इसके द्वारा-देवग्रहादि-स्मरणसे दिन मङ्गलमय बीतता है और दुःस्वप्नका फल शान्त हो जाता है। वह सुप्रभातस्तोत्र इस प्रकार है—

ब्रह्मा मुरारिस्त्रिपुरान्तकारी
भानुः शशी भूमिसुतो बुधश्च।

गुरुश्च शुक्रः सह भानुजेन
कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम्॥
सनत्कुमारः सनकः सनन्दनः
सनातनोऽप्यासुरिपिङ्गलौ च।
सप्त स्वराः सप्त रसातलाश्च
कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम्॥
सप्तार्णवाः सप्तकुलाचलाश्च
सप्तर्षयो द्वीपवराश्च सप्त।
भूरादिकृत्वा भुवनानि सप्त
कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम्॥

इस प्रकार इस परम पवित्र सुप्रभातके प्रातःकाल भक्तिपूर्वक उच्चारण करनेसे, स्मरण करनेसे दुःस्वप्नका अनिष्ट फल नष्ट होकर सुस्वप्नके फलरूपमें प्राप्त होता है। सुप्रभातका स्मरण कर पृथ्वीका स्पर्शपूर्वक प्रणाम करके शय्या त्याग करना चाहिये। मन्त्र इस प्रकार है—

समुद्रवसने देवि पर्वतस्तनमण्डले।
विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे॥

फिर शौचादि कर्म करना चाहिये। शौच जानेके बाद मिट्टी और जलसे इन्द्रियोंकी शुद्धि कर दन्तधावन करना चाहिये। तदनन्तर जिह्वा आदिकी मलिनता दूरकर स्नान करके संध्योपासन करना और सूर्यार्घ्य देना चाहिये। केवल जननाशौच और मरणाशौचमें ही बाह्यसंध्याका परित्याग निर्दिष्ट है। उसमें भी मानसिक गायत्री-जप और सूर्यार्घ्य विहित है। किंतु अन्यत्र इन कार्योंका परित्याग कभी नहीं होता। ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ एवं संन्यास—ये चार आश्रम ब्राह्मणोंके लिये ही विहित हैं। क्षत्रियके लिये संन्यास छोड़कर तीन आश्रमोंका विधान है। वैश्यके लिये ब्रह्मचर्य और गार्हस्थ्य दो ही आश्रम विहित हैं तथा शूद्रके कल्याणके लिये केवल एक ही आश्रम गार्हस्थ्य ही कहा गया है—

गार्हस्थ्यं ब्रह्मचर्यं च वानप्रस्थं त्रयो मताः।
क्षत्रियस्यापि गदिता य आचारो द्विजस्य हि॥
ब्रह्मचर्यं च गार्हस्थ्यमाश्रमद्वितयं विशः।
गार्हस्थ्यमाश्रमं त्वेकं शूद्रस्य क्षणदाचर॥

(वामनपुराण १४। ११९-१२०)

प्रायः ये ही बातें वैखानस आदि धर्म-सूत्रों एवं स्मार्त-सूत्रोंमें निर्दिष्ट हैं। सदाचारी व्यक्तिको अपने वर्णानुसार और आश्रमानुसार धर्मका परित्याग कभी नहीं करना चाहिये। जो धर्मका परित्याग कर देता है, उसके ऊपर भगवान् भास्कर (सूर्य) कुपित हो जाते हैं। उनके कोपसे प्राणीके देहमें रोग बढ़ता है, कुलका विनाश प्रारम्भ हो जाता है और उस पुरुषका शरीर ढीला पड़ने लगता है—

स्वानि वर्णाश्रमोक्तानि धर्माणीह न हापयेत्।
यो हापयति तस्यासौ परिकुप्यति भास्करः॥
कुपितः कुलनाशाय देहरोगविवृद्धये।
भानुर्वै यतते तस्य नरस्य क्षणदाचर॥

(वामनपुराण १४। १२१-१२२)

महाभारत (आश्वमेधिकपर्व) के अनुसार 'अन्तमें धर्मकी ही जय होती है, अधर्मकी नहीं, सत्यकी विजय होती है, असत्यकी नहीं। क्षमाकी जय होती है, क्रोध की नहीं', अतः सभीको—विशेषतया ब्राह्मणको सदा क्षमाशील रहना चाहिये—

धर्मो जयति नाधर्मः सत्यं जयति नानृतम्।
क्षमा जयति न क्रोधः क्षमावान् ब्राह्मणो भवेत्॥

समाश्रिता ये पदपल्लवप्लवं महत्पदं पुण्ययशोमुरारेः।
भवाम्बुधिर्वत्सपदं परं पदं पदं पदं यद् विपदां न तेषाम्॥

(भाग० १०। १४। ५८)

'जिन्होंने पुण्यकीर्ति मुकुन्द मुरारीके पदपल्लवकी नौकाका आश्रय लिया है, जो कि सत्पुरुषोंका सर्वस्व है, उनके लिये यह भव-सागर बछड़ेके खुरके गढ़ेके समान है। उन्हें परमपदकी प्राप्ति हो जाती है और उनके लिये विपत्तियोंका निवासस्थान—यह संसार नहीं रहता।'

पुराणोंमें भगवन्नाम-महिमा

(अनन्तश्रीविभूषित ज्योतिष्पीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य ब्रह्मलीन स्वामी श्रीकृष्णबोधाश्रमजी महाराज)

भगवान् अचिन्त्यपौरुष, अनन्त-गुण-गणार्णव, अच्छेद्यापरिमित-विग्रह, अपरिमेय शक्तिसम्पन्न हैं। उनके नाम-स्मरण-जप तथा रूप-माधुर्यकी सुधा-छटाके पान-रूप महावातसे आहत मेघराशिकी भाँति प्राणीके अनन्तानन्त-जन्मार्जित पापपुञ्ज नष्ट हो जाते हैं। नाममें ऐसी शक्ति है कि उसका एक बारका उच्चारण संसारके सभी पातक-पुञ्जको अग्निसात् कर देता है। पुराण कहते हैं कि सभी पातकी जीव यावज्जीवन अपनी सामर्थ्यसे अधिक शक्ति लगाकर भी उतनी पापराशि अर्जन नहीं कर सकते, जितना एक भगवन्नाम सभी पातकोंको दूर करनेकी शक्ति रखता है।

नाम्न्यस्ति यावती शक्तिः पापनिर्हरणे हरेः।
तावत् कर्तुं न शक्नोति पातकं पातकी जनः॥

(बृहद्धर्मपुराण)

जो मनुष्य गिरते, पैर फिसलते, अङ्ग-भङ्ग होते, साँपके डँसते, आगमें जलते तथा चोट लगते समय भी विवशतासे 'हरि-हरि' कहकर भगवान्‌के नामका उच्चारण कर लेता है, वह यमयातनाका पात्र नहीं रह जाता। उसका सर्वविध कल्याण होता है।

पतितः स्खलितो भग्नः संदष्टस्तप्त आहतः।
हरिरित्यवशेनाह पुमान्नार्हति यातनाम्॥

(श्रीमद्भा० ६।२।१५)

संज्ञा-संज्ञीका अभेद

अब विचारणीय यह है कि यह शक्ति भगवान्‌की है या भगवान्‌के नामकी। शब्द-शक्तिवादी कहते हैं कि नाम और नामीमें अभेद है। इसी अभेद-सम्बन्धको तादात्म्य-सम्बन्ध भी कहते हैं। अनन्त-शक्तिसम्पन्न करुणावरुणालय भगवान् सच्चिदानन्दघनका जिस प्रकार चित्-अचित् विश्व-विवर्त है, ठीक उसी प्रकार उनके चित्-अंशका विवर्त समस्त शब्द-वाङ्मय है, क्योंकि जैसे चित् प्रकाशक है, उसी प्रकार शब्द भी प्रकाशक है। ब्रह्मके सदंशका विवर्त—सभी अभिधेय अर्थजन्यमात्र है, क्योंकि सत्तारूपसे ही सभी पदार्थ विद्यमान रहते हैं। सभी शब्द और अर्थ चैतन्य-तत्त्वके विवर्त हैं। महाकवि कालिदास रघुवंशके आरम्भमें पार्वती और परमेश्वरकी स्तुति करते हुए उन्हें वागर्थकी तरह सम्पृक्त कहते हैं। सभी शब्दोंकी शक्ति जातिमें है और जाति सत्तारूप है। सत्ता ही सत्-तत्त्व है, इसीलिये सभी शब्दोंका अभिधेय यानी अर्थ सत्तारूप ही होता है।

लोकमें जिस प्रकार घट शब्द चिदंशका विवर्त है, उसी प्रकार कम्बु-ग्रीवादिमद् व्यक्ति सत्का विवर्त है। यह विवर्तवाद सच्चित्की एकताकी भाँति घट शब्द और घट-अर्थकी एकताका पोषक है। इसी प्रकार भगवान्‌के अनन्त नाम उनके वाचक होते हुए भी वाच्य भगवदर्थके साथ एकता-सम्पन्न हैं। लौकिक भेद औपाधिक है। भगवान्‌के अनन्त नाम उनके अनन्त स्वरूपके परिचायक हैं।

शब्दमें विलक्षण शक्ति है। किसी व्यक्तिका नाम लेनेपर वही आता है। वैयाकरणोंके अनुसार कोई भी व्यवहार शब्दानुगमनसे व्यभिचरित नहीं है। जिस प्रकार शब्दानुविद्ध लौकिक व्यवहार अबाधितरूपसे चलते हैं और लोक उनके प्रति कभी भ्रान्त नहीं होता, ठीक उसी प्रकार प्रत्यग्भिन्न चैतन्यमें भी शब्दका चमत्कार दीखता है। भगवन्नाम उच्चारण करनेसे तीक्ष्ण तीरके लक्ष्यभेदकी भाँति वह भगवान्‌के हृदयपर प्रभाव करता है। जिससे जीवके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। फलस्वरूप प्राणी भगवत्कृपाका भाजन बनता है—

तस्मात् संकीर्तनं विष्णोर्जगन्मङ्गलमंहसाम्।

(श्रीमद्भा० ६।३।३१)

साथ ही संस्कृत-साहित्यमें प्रयुक्त होनेवाली जितनी शब्दराशि है, वह अपने वास्तविक अर्थसे ओतप्रोत है। जैसे जल्दी बढ़नेसे वृक्ष, पैरसे जल पीनेसे पादप, पक्षियोंके उड़कर बैठनेसे तरु आदि शब्दोंकी सार्थकता है, उसी प्रकार प्रत्येक भगवन्नाम भी अपने अर्थकी शक्तिसे युक्त है। स्वयं भगवन्नाम शब्द जो 'भग-वत्-नाम'—इन तीन पदोंसे मिलकर बना है, विशिष्ट व्युत्पत्तियुक्त है। पुराण कहते हैं—

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा॥

(विष्णुपु० ६।५।७४)

इस प्रकार भगवान् शब्द समस्त ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्यमयताका संकेत करता है। यह गौरव भगवान्‌को ही प्राप्त है। उनमें अनन्त ब्रह्माण्डोंके अनन्त जीवोंका ज्ञान, उनके अनन्तानन्त कर्मोंका ज्ञान, अनन्तानन्त कर्मोंके फलोंका ज्ञान और उन कर्मफलोंको देनेकी सामर्थ्य है।

अस्तु! भगवन्नामका किसी भी प्रकार उच्चारण किया जाय, वह प्राणीके सर्वविध अघ-वृत्तिका समुच्छेदन करता है। फिर भी—'**जगत्पवित्रं हरिनामधेयं**
क्रियाविहीनं न पुनाति जन्तुम्।'

—परमपिताके नाम यद्यपि जगत्‌को पावन करनेवाले हैं, परंतु धर्म—सत्-क्रिया-विरुद्ध प्राणीको वे पवित्र नहीं करते। जिस प्रकार महौषधसेवन रोग-निवृत्तिके प्रति कारण अवश्य है, परंतु उसके साथ सुपथ्य-सेवन और कुपथ्य-परिवर्जन भी आवश्यक है। सुपथ्य-सेवन तथा कुपथ्य-परिवर्जनके साथ यदि ओषधिका प्रयोग नहीं किया गया तो वह सर्वविध गुणगणयुक्त होते हुए भी हितावह नहीं होती। इसी प्रकार अधर्मी व्यक्तिका भगवन्नाम-रूपी औषध परम कल्याण नहीं करता।

भगवन्नामके साथ वर्णाश्रम-धर्म

भगवन्नामोच्चारण यदि वर्णाश्रम-मर्यादाका अनुसरण करते हुए किया जाय तो उसमें सद्‌गुण आता है। यह ठीक है कि अजामिल-जैसोंने पुत्रके नाम 'नारायण'से ही कल्याण प्राप्त किया, परंतु वह पहले अपने स्वधर्मका पालन अवश्य करता था। जिसका जो धर्म हो उसके अनुसार उसे व्यवहार करते हुए अधिकारानुसार ही भगवन्नाम-संकीर्तन करनेसे कल्याण होता है। इसीलिये—

त्यक्त्वा स्वधर्मं चरणाम्बुजं हरे-
र्भजन्नपक्वोऽथ पतेत्ततो यदि।
यत्र क्व वाभद्रमभूदमुष्य किं
को वार्थ आप्तोऽभजतां स्वधर्मतः॥

(श्रीमद्भा० १।५।१७)

जो स्वधर्मका पालन न करते हुए यदि हरिका नामोच्चारण करता है और कदाचित् वह गिर जाय तब क्या उसका कल्याण हो सकेगा? साथ ही धर्मपालनपूर्वक हरिको न भजनेवालेको क्या कोई लाभ हो सकेगा? अर्थात् स्वधर्मानुष्ठानपूर्वक हरिनाम-कीर्तन कल्याणप्रद होता है। यही मुख्य कारण है कि आज रामायण और गीताका अधिकाधिक प्रचार-प्रसार होते हुए भी नास्तिकता, उच्छृङ्खलता तथा शास्त्रोंमें अविश्वासकी वृद्धि हो रही है। ऐसी स्थितिमें जहाँ एक ओर भगवन्नाम-महिमाकी चर्चा होती है, वहाँ स्वधर्म-पालनकी चर्चा भी होनी चाहिये। '**स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्।**' स्वधर्मका थोड़ा भी अनुष्ठान महाभयसे मुक्त करता है। '**स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः।**' अर्थात् मानव अपने वर्ण और आश्रमधर्मका पालन करते हुए भगवद्‌गुणानुवादवर्णन, उनके दिव्य मङ्गल-विग्रहका दर्शन, उनके पवित्र नामोंका उच्चारण करता हुआ कल्याणका भागी बन सकता है। श्रुति, स्मृति, पुराण और रामायण-महाभारत आदि सभी स्वधर्मानुष्ठानपूर्वक भगवन्नाम-संकीर्तनसे कल्याण-का निर्देश करते हैं।

इन सभी बातोंको तात्त्विक रूपसे जाननेके लिये संस्कृत भाषाका ज्ञान अत्यावश्यक है। आज देशके नव-शिशु धर्मसे और धार्मिक वातावरणसे दूर हटते चले जा रहे हैं। एक ओर राम-नामकी महिमा गायी जाती है तो दूसरी ओर शिखा-सूत्रको जलाञ्जलि दे दी जाती है। शिखा-सूत्रविहीन जो भी कर्म किये जाते हैं, सब निष्फल हो जाते हैं।

सदोपवीतिना भाव्यं सदा बद्धशिखेन च।
विशिखो व्युपवीतश्च यत्करोति न तत्कृतम्॥

(कात्यायनस्मृति १।४)

अतएव स्वधर्मपालनपूर्वक ही हरिनामस्मरण पूर्ण कल्याणप्रद हो सकता है, यही निर्विवाद सिद्धान्त है।

राम नाम गुन चरित सुहाए। जनम करम अगनित श्रुति गाए॥
जथा अनंत राम भगवाना। तथा कथा कीरति गुन नाना॥

पुराणोंका परम प्रयोजन—भगवत्प्राप्ति

(ब्रह्मलीन स्वामी श्रीअखण्डानन्दजी सरस्वती महाराज)

संस्कृत वाङ्मयमें पुराणोंका एक विशिष्ट स्थान है। इनमें वेदार्थका स्पष्टीकरण तो है ही, कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड तथा ज्ञानकाण्डके सरलतम विस्तारके साथ-साथ कथा-वैचित्र्यके द्वारा साधारण जनताको भी गूढ़-से-गूढ़तम तत्त्वको हृदयङ्गम करा देनेकी अपनी अपूर्व विशेषता भी है। इस युगमें धर्मकी रक्षा और भक्तिके मनोरम विकासका जो यत्किंचित् दर्शन हो रहा है, उसका समस्त श्रेय पुराण-साहित्यको ही है।

साधारण मनुष्यको जब यह मालूम होता है कि भगवान् देश, काल और वस्तु-भेदोंके परे, हमारी बुद्धि एवं इन्द्रियोंसे अतीत, अपने स्वतः-सिद्ध स्वरूपमें स्थित हैं, तब वह यह सोचकर भयभीत हो जाता है कि जो हमारी वृत्तियोंके आकलनसे सर्वथा अतीत है, उसकी हम उपासना कैसे करें, स्मृति कैसे करें, उसे हम अपने हृदय-मन्दिरमें लाकर कैसे बैठायें? मनुष्यकी इस विवशताको पुराणों और संतोंने भली-भाँति अनुभव किया और उन्होंने भगवान्‌की कृपालुताका आश्रय लेकर उनकी सर्वव्यापकता एवं सर्वात्मकताके यथार्थ आधारपर देश, काल और वस्तुओंके भीतर ही भगवान्‌के सांनिध्य, उपासना और स्मृतिका ऐसा प्रशस्त द्वार उद्घाटित किया, जिसे देखकर उनके सामने कृतज्ञताके भारसे सिर स्वयं ही अवनत हो जाता है। प्रायः सभी पुराणोंमें अनेक तीर्थों, व्रतों और पवित्र वस्तुओंके रूपमें जो भगवान्‌का रहस्यमय वर्णन आता है, उसका यही रहस्य है। सभी तीर्थ अलौकिक हैं, भगवन्मय हैं और भगवान्‌की विचित्र लीलाओंके स्मृतिचिह्न होनेके कारण दर्शन, सेवन, स्मरण और अभिगमनमात्रसे चित्त-शुद्धि करनेवाले हैं। तीर्थोंकी महिमाका पर्यवसान भी भगवान्‌की स्मृतिमें ही है, पद्मपुराणमें कहा गया है—

तीर्थानां च परं तीर्थं कृष्णनाम महर्षयः॥
तीर्थीकुर्वन्ति जगतीं गृहीतं कृष्णनाम यैः।

(स्वर्गखण्ड ५०। १६,१७)

'समस्त तीर्थोंमें सबसे बड़ा तीर्थ क्या है? भगवान् श्रीकृष्णका नाम। जो लोग श्रीकृष्ण-नामका उच्चारण करते हैं, वे सम्पूर्ण जगत्‌को तीर्थ बना देते हैं। इसके पूर्व—'प्रतिमां च हरेर्दृष्ट्वा सर्वतीर्थफलं लभेत्' इत्यादि वचनोंसे स्पष्ट मालूम होता है कि तीर्थोंकी महिमा भगवत्स्मृतिके लिये है। उनका तात्पर्य, उनका पर्यवसान निरन्तर भगवत्स्मरणमें ही है।

यह सम्पूर्ण नाम-रूप-क्रियात्मक जगत् भगवत्स्वरूप ही है। यह घट है, यह पट है, यह मठ है आदि जितनी भी विकल्पनाएँ हैं, वे भगवत्स्वरूपसे पृथक् नहीं हैं। सृष्टि और सृष्टि-कर्ता, पाल्य और पालक, संहरणीय और संहर्ता—सब कुछ एकमात्र प्रभु ही हैं। मनसे जो कुछ संकल्प-विकल्प होता है, चक्षुरादि इन्द्रियोंसे जिन-जिन विषयोंका ग्रहण होता है और बुद्धिके द्वारा जिन-जिन वस्तुओंका आकलन होता है, वे चाहे देशके रूपमें हों, कालके रूपमें हों अथवा वस्तुके रूपमें हों सब भगवान्‌के ही स्वरूप हैं।

यद्रूपं मनसा ग्राह्यं यद् ग्राह्यं चक्षुरादिभिः।
बुद्ध्या च यत्परिच्छेद्यं तद्रूपमखिलं तव॥

जिस प्रकार मन्त्रसंहिताओंमें '**पुरुष एवेदं सर्वम्**' तथा उपनिषदोंमें '**सर्वं खल्विदं ब्रह्म**' इत्यादि श्रुतियाँ 'परमात्मा सर्वस्वरूप है' इस बातका प्रतिपादन करती हैं, ठीक वैसे ही पुराण भी भगवान्‌को सर्वात्मक स्वीकार करता है। इसीसे किसी भी तीर्थके रूपमें, व्रतके रूपमें, भागवतादि ग्रन्थके रूपमें तुलसी आदि वस्तुके रूपमें कहीं भी यदि भगवद्भाव हो जाय तो धीरे-धीरे उस वस्तुकी जड़ता और पृथक्ता नष्ट होने लगती है और चैतन्यस्वरूपका आविर्भाव हो जाता है।

उपर्युक्त वर्णन पढ़कर यह प्रश्न स्वाभाविक ही उठता है कि यदि परमात्मा सर्वस्वरूप है तो क्या वह परिणामको प्राप्त होकर जगत्‌के रूपमें हुआ है अथवा उसने प्रकृति, परमाणु आदिके रूपमें स्थित जगत्‌को ही आत्मप्राधान्यसे उज्जीवित किया है अथवा वह स्वाभाविक ही जगद्रूप है? परमात्माको परिणामी माननेसे उसकी निर्विकारता नहीं बनती। प्रकृति-परमाणु आदिका अस्तित्व स्वीकार करनेपर अद्वितीयताका व्याकोप होता है। स्वाभाविक ही जगद्रूप माननेपर जन्म-मृत्यु आदिकी प्राप्ति दुर्निवार है। ऐसी अवस्थामें परमात्मा सर्वरूप है—इस वाक्यका क्या अर्थ है? सर्व भी है और परमात्मा भी है अथवा केवल परमात्मा ही

है ? इस सम्बन्धमें उपनिषदादि समस्त शास्त्रोंके साथ पुराणकी एकवाक्यता है। जैसे श्रुतियाँ ज्ञाननिर्वर्त्य होनेके कारण प्रपञ्चको मिथ्या स्वीकार करती हैं, पुरुषका बोध करके जैसे स्थाणुका बोध होता है, ठीक वैसे ही पुराण भी प्रपञ्चकी भ्रान्तिजन्यता और परमात्माके अतिरिक्त अन्य वस्तुकी असत्ता प्रतिपादन करता है।

परमात्मा त्वमेवैको नान्योऽस्ति जगतः पते।
ज्ञानस्वरूपमखिलं जगदेतदबुद्धयः।
अर्थस्वरूपं पश्यन्तो भ्राम्यन्ते तमसः प्लवे॥

'हे जगत्पते! एकमात्र तुम्हीं परमात्मा हो, आपके अतिरिक्त और कोई नहीं है। यह सम्पूर्ण जगत् ज्ञानस्वरूप ही है। इस बातको जाननेवाले अज्ञानीजन जगत्को विषयरूप देखते हैं और अज्ञानमय संसार-सागरमें भटकते रहते हैं, उन्हें पार जानेका मार्ग ही नहीं मिलता।'

परमात्माके निर्विशेष स्वरूपका स्पष्ट प्रतिपादन है—

परः पराणां परमः परमात्मा पितामहः।
रूपवर्णादिरहितो विशेषेण विवर्जितः॥
अपि वृद्धिविनाशाभ्यां परिणामविजन्मभिः।
गुणैर्विवर्जितः सर्वैः स भातीति हि केवलम्॥

'परमात्मा समस्त कार्य-कारणसे परे, अरूप, अवर्ण, निर्विशेष, ह्रासोल्लाससे रहित, निर्विकार, अज एवं निर्गुण हैं। वह केवल ज्ञानस्वरूप, स्फुरणस्वरूप हैं।' वेदान्त-प्रतिपाद्य परमात्माका इस प्रकार वर्णन करके पुराणोंमें आत्माके साथ इसके एकत्वका भी स्पष्टरूपसे निर्देश किया गया है।

नान्यं देवं महादेवाद् व्यतिरिक्तं प्रपश्यति।
तमेवात्मानमन्वेति यः स याति परं पदम्॥
मन्यन्ते ये स्वमात्मानं विभिन्नं परमेश्वरात्।
न ते पश्यन्ति तं देवं वृथा तेषां परिश्रमः॥

'जो अधिकारी पुरुष सर्वप्रकाशक परमात्मासे अतिरिक्त अन्य किसी प्रकाशकको नहीं देखता और उस परमात्माको ही अपनी आत्मा जानता है, उसे परमपदकी प्राप्ति होती है। जो अज्ञानीजन अपने-आपको परमात्मासे पृथक् मानते हैं, उन्हें परमात्माके दर्शन नहीं होते, उनका सारा परिश्रम व्यर्थ है।'

—इन दोनों श्लोकोंमें अन्वय-व्यतिरेकसे स्पष्टरूपसे यह बात कही गयी है कि जो परमात्मा और आत्माके एकत्व-ज्ञानसे सम्पन्न हैं, उन्हें परमपदकी प्राप्ति होती है और जो एकत्व-ज्ञानको स्वीकार नहीं करते, उनका परिश्रम व्यर्थ है। अब हम इस परिणामपर पहुँचते हैं कि समस्त वेदान्तोंका परम तात्पर्य जिस प्रकार प्रपञ्चके मिथ्यात्व और ब्रह्मात्मैक्यके प्रतिपादनमें है, ठीक उसी प्रकार पुराण भी उसी सिद्धान्तका प्रतिपादन करता है, क्योंकि मीमांसा-पद्धतिके अनुसार समस्त शास्त्रोंकी एकवाक्यता अनिवार्य है और बिना उसके कोई भी वचन शास्त्रकी श्रेणीमें नहीं आ सकता।

व्यतिरेक-मुखसे यह बात कही जाती है कि भगवान् सबसे परे हैं और अन्वय-मुखसे यह बात कही जाती है कि सब कुछ भगवान् ही हैं। केवल भगवान् ही ऐसे हैं जिनमें इच्छाकी एकता, स्मृतिकी एकता, दृष्टिकी एकता सम्पादन की जा सकती है। पुराणोंमें स्पष्टरूपसे कहा गया है—

ऊर्ध्वबाहुरहं वच्मि शृणु मे परमं वचः।
गोविन्दे धेहि हृदयं .....॥

'मैं बाँह उठाकर श्रेष्ठ-से-श्रेष्ठ बात कहता हूँ, सावधान होकर सुनो, जैसे हो वैसे अपना हृदय भगवान्को समर्पित करो। उनकी स्मृतिमें डूब जाओ, वही सर्वमङ्गलकी जननी है।'

परमात्मतत्त्वके साक्षात्कारके लिये जीवको ज्ञान और ध्यानकी शरण लेनी चाहिये। श्रवण-मननसे सुनिष्पन्न अर्थमें चित्तकी स्थापना अथवा भगवत्स्मृतिकी परिपक्व परिणत अवस्थाका नाम ही ध्यान है। यह ध्यान सब अधिकारियोंके लिये सुलभ न होनेके कारण ही तीर्थ, व्रत, भागवत-गीता-माहात्म्य, साधुसङ्ग, ब्राह्मण-पूजा आदिके द्वारा अन्तःकरण-शुद्धिपूर्वक भगवत्स्मृतिको जगानेकी चेष्टा की गयी है। जैसे श्रुतियाँ **'स्मृतिपरिशुद्धौ सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः'** वर्णन करती हैं और **'नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय'** आदि शत-शत वचनोंसे ज्ञानके द्वारा ही तत्त्व-साक्षात्कारका निरूपण करती हैं, ठीक वैसे ही पुराण भी—

साधुसङ्गाद् भवेद् विप्र शास्त्राणां श्रवणं प्रभोः।
हरिभक्तिर्भवेत् तस्मात् ततो ज्ञानं ततो गतिः॥

'साधु-सङ्गसे शास्त्रोंके तात्पर्यका निर्णय करानेवाला श्रवण होता है। एकमात्र भगवत्तत्त्वकी श्रेष्ठता और सत्यताका निर्णय होनेपर इतर वस्तुकी प्राप्तिकी इच्छा निवृत्त हो जाती है

और एकमात्र भगवत्प्राप्तिकी इच्छारूपा भगवद्भक्तिका उदय होता है, भगवद्भक्तिसे भगवत्तत्त्व-विज्ञान और तदनन्तर परमगतिकी प्राप्ति होती है।'

परमगतिको प्राप्त करानेवाले तत्त्वज्ञानका अव्यवहित साधन भगवद्भक्ति है। इसी तत्त्वके प्रतिपादनमें समस्त पुराणोंकी अपूर्वता है। श्रीमद्भागवतमें '**भक्तिर्विरक्ति-र्भगवत्प्रबोधः**' का भी यही अर्थ है। बिना भगवद्भक्तिके अन्तःकरण-शुद्धिकी पूर्णता और भगवत्तत्त्व-विज्ञान नहीं हो सकता। इसीलिये कहीं-कहीं तो तत्त्वज्ञानसे बढ़कर भी भक्तिकी महिमाका उल्लेख मिलता है। सत्य ही है, साधनमें बिना अनन्यनिष्ठा हुए साध्यकी प्राप्ति त्रिकालमें भी नहीं हो सकती। समस्त पुराण इस सिद्धान्तका प्रतिपादन करते हैं—भक्ति ही श्रेष्ठ है, भक्ति ही श्रेष्ठ है।

मन्त्र-जप, पूजा, ध्यान, रहस्य आदिका भी पुराणोंमें अत्यन्त श्रेष्ठ शैलीसे निरूपण किया गया है। नाम, धाम, रूप, लीला—ये सब चिन्मय भगवत्स्वरूप हैं, इन सबका अथवा इनमेंसे किसी एकका भी आश्रय ग्रहण कर लेनेपर जीवके लिये कुछ कर्तव्य शेष नहीं रह जाता। ज्ञान, मुक्ति आदि तो इनमेंसे एक-एकके सेवक हैं। अवश्य ही ऐसे वर्णनोंसे अपनी निष्ठामें साधकोंकी अनन्यता होती है और यह सर्वथा यथार्थ भी है, क्योंकि ब्रह्मतत्त्वके सिवा जब और कोई वस्तु ही नहीं है, तब किसी भी वस्तुको ब्रह्मरूपसे निरूपण करनेमें आपत्ति ही कहाँ रह जाती है। पुराणका अभिप्राय किसी भी प्रकार हो—भगवत्स्मृति, भगवद्भक्ति, भगवत्तत्त्वज्ञान एवं भगवत्तत्त्व-साक्षात्कारमें है, इसीसे इसीमें जीवकी कृतकृत्यता है।

सुहृत्-सम्मित पुराण

(अनन्तश्रीविभूषित दक्षिणाम्नायस्थ शृंगेरी-शारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीअभिनवविद्यातीर्थजी महाराज)

जिन उत्तम उपदेशोंसे हमारा जीवन पवित्र बनता है, वे उपदेश तीन प्रकारके होते हैं—प्रभु-सम्मित, सुहृत्-सम्मित और कान्ता-सम्मित। किसी कारणको बिना बताये दिये जानेवाले आदेश प्रभु-सम्मित कहे जाते हैं, जैसे राजाज्ञा। वेदोंके उपदेश प्रभु-सम्मित हैं। कथा-कहानीके द्वारा दिये जानेवाले उपदेश सुहृत्-सम्मित हैं। मित्रपर प्रभुत्वसे नहीं, किंतु स्नेहके कारण मित्रकी भलाईके लिये दिये जानेवाले सुझाव भी उपदेश ही हैं, वे सुहृत्-सम्मित माने गये हैं। अपने मधुर व्यवहारसे अपनी ओर आकृष्ट करनेवाली बातें कान्ता-सम्मित उपदेश हैं। इस कोटिमें रघुवंशादि काव्य आते हैं। पुराणोंके विषयमें कहते हैं कि—

निस्ताराय तु लोकानां स्वयं नारायणः प्रभुः।
व्यासरूपेण कृतवान् पुराणानि महीतले॥
पठनाच्छ्रवणाद्येषां नृणां पापक्षयो भवेत्।
धर्माधर्मपरिज्ञानं सदाचारप्रवर्तनम्।
गतिश्च परमा तद्वद् भक्तिर्भगवति प्रभो॥

'भगवान् नारायणने भूमण्डलपर व्यासरूपसे अवतरित होकर लोगोंको पार पहुँचानेके लिये पुराणोंकी रचना की। इन पुराणोंके पठन और श्रवणसे लोगोंका पाप नष्ट होता है, धर्म और अधर्मका ज्ञान होता है, सदाचारमें प्रवृत्ति होती है और भगवान्‌में भक्ति बढ़ती है। जिसके द्वारा मोक्षकी प्राप्ति सम्भव है।'

भगवान् व्यासने मानव-समाजको भवसागरसे पार होनेके लिये पुराणोंद्वारा भगवदवतारकी लीलाएँ, आदर्श पुरुषोंका सच्चरित्र, भक्तिमय जीवन और धर्माचरण प्रस्तुत करके मानवसमाजका कल्याण किया। पुराणोंमें सच्चे मार्गपर चलनेवालोंका श्रेय और बुरे आचरणवालोंकी दुर्गति भलीभाँति दिखायी गयी है। इन कथारूप उपदेशोंको सुनते-सुनते सामान्य मानव भी अपना मन निर्मल बनाकर धर्ममार्गपर ही चलनेमें श्रद्धावान् बनेगा। व्यासजीके सारे पुराण सुहृत्-सम्मित उपदेश हैं। इन उपदेशोंके प्रभावके ही कारण आजतक हम भारतवासियोंके मानसपटलपर अपनी पुरानी संस्कृति अङ्कित है। गाँव-गाँव और मन्दिर-मन्दिरमें पुराणोंके प्रवचन होते रहें तो साधारणजन भी अपनी संस्कृति समझकर सन्मार्गपर चल सकेगा। पुराणोंमें प्रतिपादित कुछ कथाओंका मूल वेदोंमें मिलता है। वेदोंमें संक्षिप्त रूपसे प्रतिपादित कथाएँ रोचकताके साथ विस्तारपूर्वक पुराणोंमें कही गयी हैं। कृष्ण-यजुर्वेदसंहिता ६।३।२।१, वाजसनेयि

३०।९ आदिमें प्रतिपादित उपसद्धोम नामक विषय पुराणोंमें वर्णित शिवकृत त्रिपुर-संहार-कथासे मिलता-जुलता है। पुराणप्रतिपादित प्रह्लाद, विरोचन, वसिष्ठ, विश्वामित्र आदिकोंका परिचय भी वेदमें मिलता है। वेद और पुराणोंका घना सम्बन्ध है। शास्त्रोंमें कहा गया है कि—

इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्।
बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदः मामयं प्रतरेदिति॥

'वेद अल्पज्ञसे भय खाता है कि यह मुझे ठगेगा। अतः इतिहास-पुराणोंसे वेदका उपबृंहण करना चाहिये।' पुराण सुहृत्-सम्मित होनेसे सबको प्रिय हैं। उनमें प्रतिपादित कथाओंसे सबको अच्छी शिक्षाएँ मिलती हैं। पुराण-कथा-श्रवणसे जीवन सुधरता है तथा इहलोक और परलोक—दोनोंमें श्रेय और जीवनमें शान्ति मिलती है।

पुराणोंकी वेदवत् प्रतिष्ठा

(अनन्तश्रीविभूषित ऊर्ध्वाम्नाय श्रीकाशी-(सुमेरु) पीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीशंकरानन्द सरस्वतीजी महाराज)

भारतवर्षमें पुरातनकालसे भारतीय संस्कृति एवं धर्मके विषयमें पुराणोंका महत्त्व था, है तथा रहेगा। कारण, पुराण सनातनधर्मके कल्याण-मार्गों (कर्म, उपासना, ज्ञान) का विविध ढंगसे उपस्थापन करते हैं। पुराण वेदोंके गम्भीर एवं समाधिगम्य विषयोंका विभिन्न भाव, भाषा, अलङ्कार तथा गाथाओंके द्वारा स्फुटीकरण करते हैं। वास्तवमें पुराण वेदोंके व्याख्यान-ग्रन्थ हैं। अतः पुराण सर्वथा वेदानुकूल हैं। पुराणोंमें एक भी विषय वेद-विरुद्ध नहीं है। पुराणोंमें यदि किसीको वेदविरोध या प्रतिकूलता प्रतीत होती हो तो वह उसकी बुद्धि या समझका दोष है, पुराणका नहीं। अतएव कहा गया है—

इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्॥
बिभेत्यल्पश्रुताद् वेदो मामयं प्रहरिष्यति।

(महा० आदि० १।२६७, २६८)

पुराणोंकी प्रामाणिकता

वेदोंकी भाँति पुराण भी ईश्वरके निःश्वास हैं। **'अस्य महतो भूतस्य निश्वसितमेतद् यद् ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणम्।'** (वाजसनेयि ब्राह्मणोपनिषद् २।४।१०)।

ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रिताः॥

(अथर्ववेद ११।७।२४)

तमितिहासश्च पुराणं च गाथाश्च नाराशंसीश्चानुव्यचलन्

(अथर्ववेद १५।६।११)

इतिहासस्य च वै स पुराणस्य च गाथानां च नाराशंसीनां च प्रियं धाम भवति य एवं वेद॥

(अथर्व० १५।६।१२)

पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्।
अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः॥

(मत्स्यपुराण ५३।३)

इतिहासं पुराणं पञ्चमं वेदानां वेदम्

(न्यायदर्शन ४।१।६२)

स्वाध्यायं श्रावयेत् पित्र्ये धर्मशास्त्राणि चैव हि।
आख्यानानीतिहासांश्च पुराणानि खिलानि च॥

(मनु० ३।२३२)

उपर्युक्त वेदपुराण-स्मृति-न्यायदर्शन आदि ग्रन्थोंके अध्ययन करनेपर स्फीतालोकवर्ती घटके समान पुराणोंकी परम प्राचीनता स्फुटतम हो जाती है। **'ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह'**—अथर्ववेदके इस मन्त्रमें 'पुराण' शब्द प्रथमा विभक्त्यन्त और 'यजुषा' तृतीयान्त होनेके कारण पुराणोंकी वेदापेक्षया प्रधानता स्पष्टरूपसे प्रमित होती है।

सूतजी 'शिवमहापुराण वायवीयसंहिता पूर्वभागके प्रथम अध्यायके श्लोक २७ से ३२में अष्टादश विद्याओंका वर्णन करते हुए कहते हैं—

अष्टादशानां विद्यानामेतासां भिन्नवर्त्मनाम्।
आदिकर्ता कविः साक्षाच्छूलपाणिरिति श्रुतिः॥
स हि सर्वजगन्नाथः सिसृक्षुरखिलं जगत्।
ब्रह्माणं विदधे साक्षात् पुत्रमग्रे सनातनम्॥
तस्मै प्रथमपुत्राय ब्रह्मणे विश्वयोनये।
विद्याश्चेमा ददौ पूर्वं विश्वसृष्ट्यर्थमीश्वरः॥
पालनाय हरिं देवं रक्षाशक्तिं ददौ ततः।
मध्यमं तनयं विष्णुं पातारं ब्रह्मणोऽपि हि॥

लब्धविद्येन विधिना प्रजासृष्टिं वितन्वता।
प्रथमं सर्वशास्त्राणां पुराणं ब्रह्मणा स्मृतम्॥
अनन्तरं तु वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः।
प्रवृत्तिः सर्वशास्त्राणां तन्मुखादभवत् ततः॥

भाव यह है कि—विभिन्न विषयोंका प्रतिपादन करनेवाली अष्टादश विद्याओंके मूल प्रणेता भगवान् शिव हैं, यह श्रुति-सिद्धान्त है, विश्वसृष्टिकी इच्छासे भगवान् शिवने सर्वप्रथम ब्रह्माजीका सर्जन कर विश्वनिर्माणार्थ समस्त अष्टादश विद्याओंको उन्हें दिया। समस्त विश्वके पालनार्थ भगवान् विष्णुको रक्षाशक्ति दिया। ब्रह्माजीने सृष्टिके पूर्व विश्व-विस्तारार्थ समस्त शास्त्रोंके पूर्व ही पुराणोंका स्मरण किया। पश्चात् ब्रह्माजीके मुखारविन्दसे अन्य शास्त्रोंका आविर्भाव हुआ।

इस प्रकार शिवपुराणके आधारपर वेदाद्यपेक्षया पुराणोंके माहात्म्यमें प्राथम्य सुस्पष्ट ज्ञात होता है। **'अस्य महतो भूतस्य'** इत्यादि मन्त्रके अनुसार मन्त्र-ब्राह्मणात्मक वेद, इतिहास, पुराण महान् पुरुष परमेश्वरके निःश्वासरूप हैं। यहाँपर 'निःश्वास' शब्दसे दो अर्थ परिलक्षित होते हैं। प्रथम जिस प्रकार प्राणियोंमें निःश्वास स्वाभाविक रूपसे स्वतः निकलता रहता है, उसी प्रकार परमेश्वरसे वेद-पुराणादि भी अनायास स्वाभाविक रूपसे निकलते हैं। द्वितीय निःश्वास शब्दसे वेद एवं पुराणोंकी नित्यता या सनातनता अभिव्यक्त होती है।

जीवित शरीरके यन्त्र दो प्रकारसे समुपलब्ध होते हैं—प्रथम स्वेच्छा-सेवक, द्वितीय परेच्छा-सेवक। हाथ-पाँव आदि स्वेच्छासेवक हैं। कारण, हाथ-पाँव आदिके कार्य जीवेच्छाके अधीन हैं। हाथ जीवेच्छाके बिना नहीं हिल सकता, पैर जीवकी इच्छाके बिना नहीं चल सकते। जीव स्वेच्छासे हाथ-पाँव आदिसे कार्य कराता है, अतः हाथ-पाँव आदि स्वेच्छा-सेवक हैं।

श्वासयन्त्र, पाक-यन्त्र आदि परेच्छा-सेवक है; क्योंकि जब जीव निद्राकी गोदमें रहता है, तब भी श्वास-प्रश्वास चलते रहते हैं। पाक-यन्त्र अपना कार्य करता रहता है, अतः श्वास आदि परेच्छा-सेवक हैं।

श्वास आदि परेच्छा-सेवकोंके साथ जीवका घनिष्ठ सम्बन्ध है। इनके बिगड़नेपर प्राणीका जीवन सङ्कटमय स्थितिमें पहुँच जाता है। किं बहुना, श्वास-क्रिया समाप्त होना ही जीवनका अन्त है। परंतु हाथ या पाँव आदिके नष्ट हो जानेपर भी प्राणी जीवित रहकर अपना कार्य विविध ढंगसे संचालित करता रहता है।

इसी प्रकार परमेश्वरका वेद एवं पुराणोंके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध या नित्य-सम्बन्ध है; क्योंकि वेद-पुराण भगवान्‌के निःश्वासरूप हैं। भगवान् अनादि-अनन्त हैं, अतः उनके निःश्वासरूप वेद एवं पुराण भी अनादि-अनन्त हैं। यही बात **'अस्य महतो भूतस्य निश्वसितम्'** इत्यादि मन्त्रके निःश्वास-शब्दसे ध्वनित होता है।

संक्षेपमें वेदरूपी सागरमें पुराण प्रफुल्लित पङ्कज हैं। पुराणपङ्कजमें रसब्रह्म मधु या पराग है—इस मधु-रसका पान पुण्यशाली विद्वज्जन करते हैं।

भगवान्‌को प्रसन्न करनेवाले आठ भाव-पुष्प

अहिंसा प्रथमं पुष्पं पुष्पमिन्द्रियनिग्रहः। सर्वपुष्पं दया भूते पुष्पं शान्तिर्विशिष्यते॥
शमः पुष्पं तपः पुष्पं ध्यानं पुष्पं च सप्तमम्। सत्यं चैवाष्टमं पुष्पमेतैस्तुष्यति केशवः॥

(अग्निपुराण २०२। १७-१८)

'अहिंसा' (किसी भी प्राणीका तन-मन-वचनसे न बुरा चाहना, न करना, न समर्थन करना) प्रथम पुष्प है। **इन्द्रिय-निग्रह'** (इन्द्रियोंको मनमाने विषयोंमें न जाने देना) दूसरा पुष्प है। **'प्राणिमात्रपर दया'** (दूसरेके दुःखको अपना दुःख समझकर उसे दूर करनेके लिये चेष्टा) तीसरा सर्वोपयोगी पुष्प है। **'शान्ति'** (किसी भी अवस्थामें चित्तका क्षुब्ध न होना) चतुर्थ पुष्प सबसे बढ़कर है। **'शम'** (मनका वशमें रहना) पाँचवाँ पुष्प है। **'तप'** (स्वधर्मके पालनार्थ कष्ट सहना) छठा पुष्प है। **ध्यान'** (इष्टदेवके स्वरूपमें चित्तकी तदाकार-वृत्ति) सातवाँ पुष्प है और आठवाँ पुष्प **'सत्य'** है। इन पुष्पोंसे भगवान् केशव संतुष्ट होते हैं।

पुराणोंकी महिमा

(अनन्तश्रीविभूषित तमिलनाडुक्षेत्रस्थ काञ्चीकामकोटिपीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य वरिष्ठ स्वामी श्रीचन्द्रशेखरेन्द्र सरस्वतीजी महाराज)

विधिप्रधान हैं चारों वेद। वेदोक्त विषयोंको ही मित्रोंके जैसे भाव प्रधानतया बताते हैं पुराण। ये अतीव प्राचीनतम इस देशके इतिहासके सारगर्भित भी हैं। अतएव प्राचीनतम भारतीय सनातनधर्मका, उसकी उत्कृष्टतम संस्कृतिका भी अतिरुचिर स्वभावोक्ति वर्णन पाये जाते हैं इनमें। इनमें क्रुद्ध हुए ऋषि-मुनियोंके शाप-प्रतिशापके लेन-देनका भी वर्णन है ही। इन विषयोंको स्वरूपमात्रसे विचार करनेकी प्रवृत्ति छोड़कर फलसे ही इनका विचार करना उचित होगा। फल तो व्यक्ति तथा समुदाय दोनोंके ही भलाईके होते हैं।

उदाहरणार्थ महाराज परीक्षित् एक दिन शिकार खेलने निकल पड़े। घने जंगलमें घूम-फिरकर थके-माँदे उन्हें अपनी प्यास बुझानेका कोई उपाय दीख न पड़ा। वहाँ ध्यानमें मग्न थे एक मुनिवर। उनसे बहुत प्रकारसे पूछताछ की। सब व्यर्थ निकले। विषण्ण होकर लौटते उन्हें एक मरा साँप दीख पड़ा। उसे उस ऋषिवरके गलेमें माला पहनानेके लिये उनके मनमें तीव्र उत्कण्ठा उठी। सत्कुल-प्रसूत होनेपर भी वे उसे दबा न सके। अतः अपनी इच्छा पूरी करके लौट पड़े। थोड़ी देरके बाद ऋषिका पुत्र वहाँ आया और उस दृश्यको देखकर क्रुद्ध हो उठा तथा शाप दिया कि 'जिस अधमका यह कुकृत्य है, उसकी मृत्यु आजसे सातवें दिन सर्प-दंशसे ही हो जाय।'

महाराज परीक्षित्को शापकी बातका पता चला। अपने कुकृत्यका दण्ड भोगनेके लिये वे तैयार हो गये। अपनी मृत्युका निश्चित समय समझकर संतुष्ट हुए। उन्होंने मुनिवर श्रीशुकंकी वाणीसे श्रीमद्भागवत सुनते-सुनते प्राणत्याग किया और मुक्ति पायी। उन्हें मिली मुक्ति और समुदायको मिला पुराणरत्न श्रीमद्भागवत, जिससे आज भी श्रीकृष्ण-भक्तिका समृद्ध स्रोत बढ़ा रहता है।

और एक हैं ये चक्रवर्ती महाराज दशरथ। एक दिन ये शिकार करने निकल पड़े। थके-माँदे एक तालाबके किनारे एक पेड़के नीचे आराम कर रहे थे। गड़-गड़की ध्वनि सुनकर पानी पीते हाथीपर शब्दवेधी बाण चलाये। फिर क्या ? 'हाय मरा' की मानव-वाणी सुन पड़ी। चकित होकर वे दौड़ पड़े और जान लिये कि अंधे तथा बूढ़े अपने माता-पिताकी प्यास बुझानेवाला युवक है मरता। मृत युवकको लेकर बूढ़ोंके पास पहुँचे और शाप पाया कि 'हमारे-जैसे तुम्हें भी अपने पुत्रके वियोगसे मृत्यु हो जाय।' फलस्वरूप चक्रवर्तीको संतान-लाभ हुआ एवं समुदायको इतिहास-रत्न श्रीमद्वाल्मीकिरामायण मिला।

अतः पुराणोंका तत्त्वार्थ समझनेकी प्रवृत्ति अपनायें, हमारी संस्कृतिका सच्चा स्वरूप पहचान लें एवं उन्नत जीवन बिताने लगें।

पुराणेष्वर्थवादत्वं ये वदन्ति नराधमाः ॥
तैरर्जितानि पुण्यानि क्षयं यान्ति द्विजोत्तमाः।
अन्यानि साधयन्त्येव कार्याणि विधिना नराः ॥
पुराणानि द्विजश्रेष्ठाः साधयन्ति न मोहिताः।
अनायासेन यः पुण्यानीच्छतीह द्विजोत्तमाः ॥
श्रोतव्यानि पुराणानि तेन वै भक्तिभावतः।

(नारद० १।१।५७-६१)

(सूतजीने ऋषियोंसे कहा—) 'द्विजवरो ! जो नराधम पुराणोंमें अर्थवाद (अतिरञ्जित कथन) की शङ्का करते हैं, उनके किये हुए समस्त पुण्य नष्ट हो जाते हैं। मोहग्रस्त मानव दूसरे-दूसरे कार्योंके साधनमें लगे रहते हैं, परंतु पुराण श्रवणरूप पुण्यकर्मका अनुष्ठान नहीं करते हैं। जो मनुष्य बिना किसी परिश्रमके यहाँ अनन्त पुण्य प्राप्त करना चाहता हो, उसको भक्तिभावसे निश्चय ही पुराणोंका श्रवण करना चाहिये।

सभी कथाओंका तात्पर्य—भगवत्प्राप्ति

(अनन्तश्रीविभूषित श्रीमद्विष्णुस्वामिमतानुयायी श्रीगोपालवैष्णवपीठाचार्यवर्य श्री १०८ श्रीविट्ठलेशजी महाराज)

भगवान्‌की आज्ञारूप वेदोंमें जन-कल्याणार्थ सभी साधनोंका विधान विहित है तथा श्रीहरिकी महिमाका गुणगान है। उन वेदोंके दुरूह एवं परोक्षवादी होनेके कारण सभीको उनका ज्ञान होना असम्भव है। इसलिये दयालु भगवान्‌ने वेद-व्यास-रूपसे अवतीर्ण होकर अठारह पुराणोंद्वारा वेदोंका बृंहण किया है। सभी शास्त्रोंमें पुराणोंकी प्राथमिकता मानी गयी है—'**पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्।**' दह विद्याओंकी गणनामें पुराणका प्रथम स्थान है, जिसमें भी मानवोंके आचरणीय धर्मोंका प्रतिपादन किया गया है—

पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्राङ्गमिश्रितः ।
वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश ॥

पुराण पाँचवाँ वेद है। यह छान्दोग्योपनिषद् एवं श्रीमद्भागवतमें स्पष्टतया वर्णित है—

'इतिहासपुराणं च पञ्चमं वेदानां वेदम्। (छान्दो०)।
'इतिहासपुराणं च पञ्चमो वेद उच्यते ॥'
(श्रीमद्भा० १।४।२०)

धर्माचरणमें पुराणोंको भी प्रामाणिक मानना चाहिये। यद्यपि पुराणोंमें मनु आदि स्मृतियोंकी तरह आनुपूर्वक धर्मोंका निरूपण नहीं किया गया है तथापि उनमें सर्वत्र प्रसङ्गोंमें जहाँ-तहाँ वर्णाश्रम-धर्मोंका भलीप्रकारसे निरूपण हुआ है। जो धर्म स्मृतियोंमें संक्षेपसे कथित हैं, उन्हींका पुराणोंमें दृष्टान्तरूप अनेक कथाओंद्वारा विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। अतः स्मृतियोंके समान पुराणोंको भी उपयोगी होनेसे धर्म-विषयमें प्रमाण मानना योग्य है।

साथ ही यह भी सिद्ध होता है कि पुराण-विद्या सनातनी है, क्योंकि कल्पादिमें ब्रह्माजीने पुराणका मनसे स्मरण किया था—'**पुराणं मनसाऽस्मरत्।**' जैसे वेद कर्म-ज्ञान-उपासना—इन भेदोंसे त्रिकाण्ड-विषयक होकर भी ब्रह्मात्म-विषयक हैं, वैसे सभी पौराणिकी कथाओंका तात्पर्य भगवत्प्राप्ति ही है। जैसे सभी नदियाँ बहती हुईं अन्तमें समुद्रमें लीन हो जाती हैं, वैसे ही सभी वचनोंका पर्यवसान परमात्मामें ही होता है। इसलिये वेदोंके उपबृंहक पौराणिक वर्णन परमात्मपरक होनेसे प्रामाणिक माने गये हैं। पुराणोंमें सर्ग-विसर्गादि पाँच लक्षण, व्रतोपवास, तीर्थ, उपासना, योग-यज्ञादिका समास-व्यास-रूपसे वर्णन किया गया है। ये सभी साधन अन्तःकरणकी शुद्धिद्वारा भगवत्प्राप्तिमें सहायक सिद्ध होते हैं। जहाँ-जहाँ भूगोल-खगोल चौदह लोकोंका वर्णन है वह सब भगवान्‌के स्थूल स्वरूपका ही वर्णन है। बिना स्थूल स्वरूपके जाने सूक्ष्मस्वरूपका ज्ञान असम्भव है। यही विषय पुराणोंमें यत्र-तत्र-सर्वत्र वर्णित है। ब्रह्माण्ड-वर्णनमें सभी कथाओंका—कहीं दृष्टान्त-रूपमें तो कहीं उदाहरण-रूपमें समावेश है। अतः भगवन्महिमाका वर्णन-श्रवण करनेसे भगवत्कृपाद्वारा भगवत्प्राप्ति अवश्य होती है। भगवान् परम दयालु हैं, जिन्होंने जीवोंके कल्याणार्थ श्रवण-कीर्तन-स्मरण करनेयोग्य बहुत-सी अद्भुत लीलाएँ की हैं। जिनके सेवन करनेसे सांसारिक दुःख, शोक-अज्ञानका नाश होता है; क्योंकि सर्वत्र पुराणोंमें भक्तार्तिहारक श्रीहरिका ही वर्णन मिलता है। कहीं आवेशावतार, कहीं अंशावतार, कहीं कलावतार, कहीं पूर्णावतारका वर्णन है। ये सभी अवतार दुष्ट-निग्रह और शिष्ट-अनुग्रहके लिये हैं। बिना असाधुके दमन किये साधुका कल्याण होना असम्भव है। एतदर्थ भगवान् देव, ऋषि, मनुष्य, जलचर आदिमें प्रकट होकर जगत्‌का पालन-निर्वाहादि करते हैं। उन्हींके गुण, विभूति, नाम, रूपोंके प्रतिपादक पुराण हैं। अतः उनमें वर्णित सभी कथाओंका तात्पर्य भगवत्प्राप्ति ही है।

अहं हरिः सर्वमिदं जनार्दनो नान्यत्ततः कारणकार्यजातम्।
ईदृङ्मनो यस्य न तस्य भूयो भवोद्भवा द्वन्द्वगदा भवन्ति ॥
(विष्णु० १।२२।८७)

'मैं तथा यह सम्पूर्ण जगत् जनार्दन श्रीहरि ही हैं; उनसे भिन्न और कुछ भी कार्य-कारणादि नहीं हैं'—जिसके चित्तमें ऐसी भावना है उसे फिर देहजन्य राग-द्वेषादि द्वन्द्वरूप रोगकी प्राप्ति नहीं होती।'

शास्त्रप्रतिपादित पुराण-माहात्म्य

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

हमारे शास्त्रोंमें पुराणोंकी बड़ी महिमा है। उन्हें साक्षात् श्रीहरिका रूप बताया गया है। जिस प्रकार सम्पूर्ण जगत्को आलोकित करनेके लिये भगवान् सूर्यरूपमें प्रकट होकर हमारे बाहरी अन्धकारको नष्ट करते हैं, उसी प्रकार हमारे हृदयान्धकार—भीतरी अन्धकारको दूर करनेके लिये श्रीहरि ही पुराण-विग्रह धारण करते हैं।[१] जिस प्रकार त्रैवर्णिकोंके लिये वेदोंका स्वाध्याय नित्य करनेकी विधि है, उसी प्रकार पुराणोंका श्रवण भी सबको नित्य करना चाहिये—'**पुराणं शृणुयान्नित्यम्**' पुराणोंमें धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—चारोंका बहुत ही सुन्दर निरूपण हुआ है और चारोंका एक-दूसरेके साथ क्या सम्बन्ध है, इसे भी भलीभाँति समझाया गया है। श्रीमद्भागवतमें लिखा है—

धर्मस्य ह्यापवर्ग्यस्य नार्थोऽर्थायोपकल्पते।
नार्थस्य धर्मैकान्तस्य कामो लाभाय हि स्मृतः॥
कामस्य नेन्द्रियप्रीतिर्लाभो जीवेत यावता।
जीवस्य तत्त्वजिज्ञासा नार्थो यश्चेह कर्मभिः॥

(१।२।९-१०)

'धर्मका फल है संसारके बन्धनोंसे मुक्ति अथवा श्रीभगवान्की प्राप्ति। धर्मसे यदि किसीने कुछ सांसारिक सम्पत्ति उपार्जन कर ली तो इसमें उस धर्मकी कोई सफलता नहीं है। इसी प्रकार धनका एकमात्र फल है धर्मका अनुष्ठान, वह न करके यदि किसीने धर्मसे कुछ भोगकी सामग्रियाँ एकत्र कर लीं तो यह कोई सच्चे लाभकी बात नहीं हुई। शास्त्रोंने कामको भी पुरुषार्थ माना है। पर उस पुरुषार्थका अर्थ इन्द्रियोंको तृप्त करना नहीं है। जितने सोने-खाने आदिसे हमारा जीवन-निर्वाह हो जाय, उतना आराम ही यहाँ 'काम' पुरुषार्थसे अभिप्रेत है तथा जीवननिर्वाहका—जीवित रहनेका भी फल यह नहीं है कि अनेक प्रकारके कर्मोंके पचड़ेमें पड़कर इस लोक या परलोकका सांसारिक सुख प्राप्त किया जाय। उसका परम लाभ तो यह है कि वास्तविक तत्त्वकी—भगवत्तत्त्वको जाननेकी शुद्ध इच्छा हो।' वस्तुतः सारे साधनोंका फल है भगवान्की प्रसन्नताको प्राप्त करना। और वह भगवत्प्रीति भी पुराणोंके श्रवणसे सहजमें ही प्राप्त की जा सकती है। 'पद्मपुराण'में कहा गया है—

तस्माद्यदि हरेः प्रीतेरुत्पादे धीयते मतिः।
श्रोतव्यमनिशं पुम्भिः पुराणं कृष्णरूपिणः॥

(पद्म०, स्वर्ग० ६१।६३)

'इसलिये यदि भगवान्को प्रसन्न करनेका मनमें संकल्प हो तो सभी मनुष्योंको निरन्तर श्रीकृष्णके अङ्गभूत पुराणोंका श्रवण करना चाहिये।' इसीलिये पुराणोंका हमारे यहाँ बहुत आदर है।

वेदोंकी भाँति पुराण भी हमारे यहाँ अनादि माने गये हैं और उनका रचयिता कोई नहीं है। सृष्टिकर्ता ब्रह्माजी भी उनका स्मरण ही करते हैं। इसी दृष्टिसे कहा गया है—'**पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्।**' इनका विस्तार सौ करोड़ (एक अरब) श्लोकोंका माना गया है—'**शत-कोटिप्रविस्तरम्।**' उसी प्रसङ्गमें यह भी कहा गया है कि समयके परिवर्तनसे जब मनुष्यकी आयु कम हो जाती है और इतने बड़े पुराणोंका श्रवण और पठन एक जीवनमें मनुष्योंके लिये असम्भव हो जाता है, तब उनका संक्षेप करनेके लिये स्वयं भगवान् प्रत्येक द्वापरयुगमें व्यासरूपमें अवतीर्ण होते हैं और उन्हें अठारह भागोंमें बाँटकर चार लाख श्लोकोंमें सीमित कर देते हैं। पुराणोंका यह संक्षिप्त संस्करण ही भूलोकमें प्रकाशित होता है। कहते हैं स्वर्गादि लोकोंमें आज भी एक अरब श्लोकोंका विस्तृत पुराण विद्यमान है[२]। इस प्रकार भगवान् वेदव्यास भी पुराणोंके रचयिता नहीं, अपितु वे उसके

---

१. यथा सूर्यवपुर्भूत्वा प्रकाशाय चरेद्धरिः। सर्वेषां जगतामेव हरिरालोकहेतवे॥
तथैवान्तःप्रकाशाय पुराणावयवो हरिः। विचरेदिह भूतेषु पुराणं पावनं परम्॥ (पद्म०, स्वर्ग० ६१।६१-६२)

२. कालेनाग्रहणं दृष्ट्वा पुराणस्य तदा विभुः॥
व्यासरूपस्तदा ब्रह्मा संग्रहार्थं युगे युगे। चतुर्लक्षप्रमाणेन द्वापरे द्वापरे जगौ॥
तदाष्टादशधा कृत्वा भूलोकेऽस्मिन् प्रकाशितम्। अद्यापि देवलोकेषु शतकोटिप्रविस्तरम्॥ (पद्म०, सृष्टि० १।५०-५२)

संक्षेपक अथवा संग्राहक ही सिद्ध होते हैं। इसीलिये पुराणोंको 'पञ्चम वेद' कहा गया है।

'इतिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदम्।'

(छान्दोग्य-उपनिषद् ७। १। २)

उपर्युक्त उपनिषद्वाक्यके अनुसार यद्यपि इतिहास-पुराण दोनोंको ही 'पञ्चम वेद' की गौरवपूर्ण उपाधि दी गयी है, फिर भी वाल्मीकीय रामायण और महाभारत जिनकी इतिहास संज्ञा है, क्रमशः महर्षि वाल्मीकि तथा वेदव्यासद्वारा प्रणीत होनेके कारण पुराणोंकी अपेक्षा अर्वाचीन ही हैं। इस प्रकार पुराणोंकी पुराणता सर्वापेक्षया प्राचीनता सुतरां सिद्ध हो जाती है। इसीलिये वेदोंके बाद पुराणोंका ही हमारे यहाँ सबसे अधिक सम्मान है। बल्कि कहीं-कहीं तो उन्हें वेदोंसे भी अधिक गौरव दिया गया है। पद्मपुराणमें लिखा है।

यो विद्याच्चतुरो वेदान् साङ्गोपनिषदो द्विजः।
पुराणं च विजानाति यः स तस्माद्विचक्षणः॥

(सृष्टि० २। ५१)

'जो ब्राह्मण अङ्गों एवं उपनिषदोंसहित चारों वेदोंका ज्ञान रखता है, उससे भी बड़ा विद्वान् वह है, जो पुराणोंका विशेष ज्ञाता है।' यहाँ श्रद्धालुओंके मनमें स्वाभाविक ही यह शङ्का हो सकती है कि उपर्युक्त श्लोकमें वेदोंकी अपेक्षा भी पुराणोंके ज्ञानको श्रेष्ठ क्यों बतलाया है। इस शङ्काका दो प्रकारसे समाधान किया जा सकता है। पहली बात तो यह है कि उपर्युक्त श्लोकके 'विद्यात्' और 'विजानाति'—इन दो क्रिया-पदोंपर विचार करनेसे यह शङ्का निर्मूल हो जाती है। बात यह है कि ऊपरके वचनमें वेदोंके सामान्य ज्ञानकी अपेक्षा पुराणोंके विशिष्ट ज्ञानका वैशिष्ट्य बताया गया है, न कि वेदोंके सामान्य ज्ञानकी अपेक्षा पुराणोंके सामान्य ज्ञानका अथवा वेदोंके विशिष्ट ज्ञानकी अपेक्षा पुराणोंके विशिष्ट ज्ञानका। पुराणोंमें जो कुछ है, वह वेदोंका ही तो विस्तार—विशदीकरण है। ऐसी दशामें पुराणोंका विशिष्ट ज्ञान वेदोंका ही विशिष्ट ज्ञान है और वेदोंका विशिष्ट ज्ञान वेदोंके सामान्य ज्ञानसे ऊँचा होना ही चाहिये। दूसरी बात यह है कि जो बात वेदोंमें सूत्ररूपसे कही गयी है, वही पुराणोंमें विस्तारसे वर्णित है। उदाहरणके लिये परम तत्त्वके निर्गुण-निराकार रूपका तो वेदों (उपनिषदों) में विशद वर्णन मिलता है, परंतु सगुण-साकार तत्त्वका बहुत ही संक्षेपमें कहीं-कहीं वर्णन मिलता है। ऐसी दशामें जहाँ पुराणोंके विशेष ज्ञाताको सगुण-निर्गुण दोनों तत्त्वोंका विशिष्ट ज्ञान होगा, वेदोंके सामान्य ज्ञाताको केवल निर्गुण-निराकारका ही सामान्य ज्ञान होगा। इस प्रकार उपर्युक्त श्लोकोंकी संगति भलीभाँति बैठ जाती है और पुराणोंकी जो महिमा शास्त्रोंमें वर्णित है, वह अच्छी तरह समझमें आ जाती है।

पुराणोंका क्रम और सृष्टिविद्याका निरूपण

(महामहोपाध्याय स्व० पं० श्रीगिरिधरजी शर्मा चतुर्वेदी)

पुराण-विद्या महर्षियोंका सर्वस्व है। यह वह अटूट खजाना है, जिसके प्रभावसे अनेक प्रकारकी दरिद्रताओंका शिकार बनकर भी भारत आज धनी है, आज भी संसारकी सभ्य जातियोंके समक्ष यह अपना मस्तक ऊँचा रख सकता है। बीसवीं शताब्दी विज्ञानका मध्याह्न कही जाती है, किंतु जितने विज्ञान आजतक उच्च भूमिकापर पहुँच चुके हैं, जितने अभी अधूरे हैं तथा जो अभी गर्भमें ही हैं, उनमेंसे एक भी ऐसा नहीं है, जिसके सम्बन्धमें पुराणोंमें कोई भी उल्लेख न मिलता हो। जितने भी सामाजिक और राजनीतिक वाद इस समय भूमण्डलमें प्रसिद्ध हैं, उनमेंसे भी किसीका संक्षेपसे, किसीका विस्तारसे, किसीका पूर्वपक्षरूपसे और किसीका निन्दारूपसे—इस तरह किसी-न-किसी प्रकारसे पुराणोंमें अवश्य उल्लेख मिलेगा। आजसे हजारों वर्ष पूर्व इन सब बातोंका हमारे पूर्वजोंको ज्ञान था, वे इन सबकी आलोचना कर सकते थे, प्रत्यक्षदर्शीकी तरह सब बातोंपर अपनी राय दे सकते थे। पुराण-विद्याके समान कौन-सी विद्या संसारकी किसी जातिके पास है? इस प्रकारकी विद्याको अपने 'कोष'में रखकर हिंदू-जाति गौरवान्वित है।

पुराण अठारह हैं—यह प्रसिद्ध बात है। वस्तुतः ये अठारह स्वतन्त्र पुराण नहीं, किंतु एक ही पुराणके अठारह प्रकरण हैं। जैसे एक ग्रन्थमें कई अध्याय होते हैं, वैसे ही एक पुराणके ये अठारह अध्याय हैं। यही कारण है कि उनका क्रम

नियत है। स्वतन्त्र ग्रन्थोंमें कोई नियत क्रम नहीं रहता, वक्ताकी इच्छा है कि उन्हें अपने व्याख्यान या लेखमें किसी भी क्रमसे आगे-पीछे रख दे, किंतु पुराणोंमें ऐसा नहीं हो सकता, उनका एक नियत क्रम है। सप्तम पुराण कहनेसे 'मार्कण्डेयपुराण'का ही बोध होगा, त्रयोदश पुराण कहनेसे 'स्कन्दपुराण' ही समझा जायगा। 'गरुडपुराण' सत्रहवाँ पुराण ही कहलायेगा—इत्यादि। इस संख्यामें कभी फेर-बदल नहीं हो सकता। एक ग्रन्थके अध्यायोंमें उलट-फेर कौन कर सकता है। उलट-फेर कर दिया जाय तो सब ग्रन्थका स्वारस्य ही बिगड़ जाय। इसलिये पुराण सर्वदा निम्नलिखित क्रमसे ही समझे जाते हैं—१-ब्राह्म, २-पाद्म, ३-वैष्णव, ४-वायव्य (शैव), ५-भागवत, ६-नारद, ७-मार्कण्डेय, ८-आग्नेय, ९-भविष्य, १०-ब्रह्मवैवर्त, ११-लैङ्ग, १२-वाराह, १३-स्कान्द, १४-वामन, १५-कौर्म, १६-मात्स्य, १७-गारुड और १८-ब्रह्माण्ड। स्थूल दृष्टिसे भी देखते ही प्रत्येक भावुकको यह चमत्कार प्रतीत होगा कि इस विद्याका आरम्भ ब्रह्मसे और समाप्ति ब्रह्माण्डपर है तथा मध्यमें भी 'ब्रह्मवैवर्त' में ब्रह्मकी स्मृति करा दी जाती है। इसीसे स्पष्ट हो गया कि यह 'सृष्टिविद्या' है, जो ब्रह्मसे आरम्भकर 'ब्रह्माण्ड'तक हमारे ज्ञानको पहुँचा देती है और आदि, मध्य एवं अन्तमें ब्रह्मका कीर्तन करती हुई ब्रह्मपरसे ज्ञानीको विचलित नहीं होने देती। यद्यपि—

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्॥

—इस लक्षणके अनुसार पुराणमें पाँच विषयोंका निरूपण प्रधान है, किंतु विचारदृष्टिसे प्रतीत होगा कि 'सृष्टिविद्या' ही पुराणका मुख्य विषय है, शेष चार उसके 'उपोद्घात' हैं। सृष्टिका निरूपण उन चारोंके बिना साङ्गोपाङ्ग नहीं बनता, इसलिये उन चारोंको साथ लेना पड़ता है, किंतु पुराणका मुख्य प्रतिपाद्य सृष्टिविद्या ही है। सृष्टिका क्रम पुराणोंमें संक्षेपतः इस प्रकार बताया गया है—'क्षीरसमुद्रमें शेषशय्यापर भगवान् नारायण सो रहे हैं, जगज्जननी लक्ष्मी उनके पैर दबा रही हैं, भगवान् नारद पास खड़े स्तुति कर रहे हैं। उन्हें जब सृष्टि रचनेकी इच्छा होती है, तब उनकी नाभिसे एक 'पद्म' (कमल) निकलता है, उस कमलमेंसे चतुर्मुख ब्रह्मा प्रादुर्भूत होते हैं, वे ब्रह्मा स्थावर-जङ्गमात्मक सब विश्वको बनाते हैं।' इस चित्र (नक्शे)को ध्यानमें रखिये और अब पूर्वोक्त पुराणोंके क्रमपर चलिये। कार्यसे कारणकी ओर जाना है, स्थूलसे सूक्ष्ममें प्रवेश करना है। स्थावर-जङ्गमात्मक दृश्य-जगत्के निर्माता ब्रह्माके तत्त्वको पहला 'ब्राह्मपुराण' समझाता है। ब्रह्मा जहाँसे प्रकट हुए, उस पद्म (कमल) का निरूपण दूसरे 'पाद्मपुराण'में हुआ है। पद्मके उद्भवस्थान भगवान् विष्णुको तीसरे वैष्णवपुराणने समझाया है और उनके आधार (शयनस्थान) 'शेष' का वायुपुराणमें निरूपण किया गया है। इसी वायुपुराणको कहीं 'शिवपुराण' नामसे भी लिखा है, तात्त्विक दृष्टिसे इन नामोंमें कोई भेद नहीं है—यह तत्त्व-निरूपणसे स्पष्ट हो सकता है। इस शेषके भी आधार 'सरस्वान्' (क्षीरसागर) को पाँचवाँ 'भागवत' समझाता है, अतएव उसे 'सारस्वतकल्प' कहते हैं—'**सरस्वत इदं सारस्वतम्।**' अब रह गये 'नारद भगवान्', उनका निरूपण छठा नारदपुराण कर देता है। यों पूर्वषट्क (पहले छः पुराणों) में यह सृष्टिका पुराणोक्त चित्र—एक-एक करके विशदरूपसे समझा दिया जाता है।

श्रद्धावान् उत्तमाधिकारियोंके लिये यह वर्णन संतोषप्रद हो जाता है। वे इन सबको भगवद्विभूति समझकर तर्क-वितर्कसे परे रहते हुए सर्वाधिष्ठाता भगवान्के भजनमें समय-यापन करते रहते हैं, किंतु जो मध्यमाधिकारी तर्कके बिना संतुष्ट नहीं होते, जिनके चित्तमें शङ्काओंका आन्दोलन चलता रहता है कि 'एक छोटे-से कमलके पुष्पपर बैठकर ब्रह्मा इतने विस्तृत ब्रह्माण्डको कैसे बनाता है, कमलके पुष्पमेंसे चार मुखका मनुष्याकारधारी ब्रह्मा कैसे निकल पड़ा?' आदि, उनके संतोषार्थ पद्मपुराणने विशेष प्रयत्न किया है। इस पुराणमें यह स्पष्ट अक्षरोंमें बताया गया है कि इस पृथ्वीको ही पद्म कहते हैं। देखिये पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड, अध्याय ४०—

तच्च पद्मं पुरा भूतं पृथिवीरूपमुत्तमम्।
यत्पद्मं सा रसा देवी पृथिवी परिचक्ष्यते॥

'विष्णुभगवान्की नाभिसे जो कमल पहले उत्पन्न हुआ, वह पृथ्वीरूप था। उस पद्मको ही रसा अथवा पृथ्वी देवी कहा जाता है' आदि। इतना ही नहीं, इसके पत्र-केसरादिरूपसे भिन्न-भिन्न वर्षादिका भी वहाँ निरूपण किया गया है।

जब यह निश्चय हो गया कि यह पृथ्वी पद्म है, तब अब समझनेमें देर न लगेगी कि इस पृथ्वीपर अभिव्याप्त आग्नेय प्राण ही ब्रह्मा है, जो 'चतुर्मुख' (चारों ओर फैलता हुआ) अन्तरिक्षके चन्द्रमण्डलस्थ सौम्यप्राणसे मिलकर सब प्रकारकी सृष्टि करता रहता है—'**अग्नीषोमात्मकं जगत्।**' और यह भी शीघ्र ही समझमें आ जायगा कि जिनकी नाभिसे यह पृथ्वीरूप कमल निकला है, वे विष्णुभगवान् प्रत्यक्ष देव 'सूर्यनारायण' ही हैं। वैज्ञानिक भाषामें 'नाभि' केन्द्रको कहते हैं, 'सूर्यमण्डलके केन्द्रसे ही यह पृथ्वी प्रादुर्भूत होकर उस मण्डलसे पृथक् हो गयी है'—यह विज्ञान इस वर्णनसे प्रस्फुट हो जाता है। पुराणका रहस्य यहाँ पूरा नहीं हो जाता, इससे भी गम्भीरतम विज्ञान इस वर्णनमें निगूढ है कि जितने भी (सूर्य, चन्द्र, तारा, पृथ्वी आदि) मण्डल बनते हैं, वे पद्मरूप (गोलाकार) हैं और वे सब विष्णुकी नाभिसे ही निकलते हैं। '**यज्ञो वै विष्णुः**'—विष्णुभगवान् यज्ञरूप हैं और आदान-प्रदानरूप यज्ञके बिना किसी भी मण्डलकी उत्पत्ति हो नहीं सकती। द्वादश आदित्योंमें अन्तिम आदित्यका नाम विष्णु है—यह वेद, पुराण आदिमें सर्वत्र ही स्फुट है, अतः विष्णुनामसे सूर्यके ग्रहणमें कोई शङ्का नहीं होनी चाहिये। यहाँतक यह हमारी 'त्रिलोकी' हुई—पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्यु (सूर्यमण्डल) अथवा दूसरे शब्दोंमें भूः, भुवः, स्वः। अब सूर्यमण्डलके आगेका जो अन्तरिक्ष—'महः' है, वह वायुप्रधान होनेके कारण विष्णुका शयनस्थान 'शेषशय्या' है। हमारे अन्तरिक्षकी (सूर्यमण्डलसे नीचेकी) वायु उपद्रावक भी है, किंतु यह दूसरे अन्तरिक्ष 'महः' लोककी वायु विशुद्ध कल्याणप्रद है, इसलिये इसे 'शिव' कहते हैं। अतएव इसके निरूपक पुराणके 'वायुपुराण' या 'शिवपुराण' दोनों नाम प्रसिद्ध हैं और इन्हें वायुभक्षी सर्पोंके ईश्वर शेषके रूपमें पौराणिक नक्शेमें बताया गया है। वह भी जिसके आधारपर प्रतिष्ठित है, वह सोमप्रधान 'आपोमण्डल' क्षीरसमुद्र, परमेष्ठिमण्डल या 'जनः' है और उसके समीप प्रतिष्ठित स्वयम्भूमण्डल 'तपः' और नारद 'सत्यम्' हैं। जनलोक या परमेष्ठिमण्डल 'आपोमय' है, इसी कारण वह क्षीरसमुद्र कहलाया है, ये 'अप्' नरके पुत्र होनेके कारण 'नार' कहे गये हैं, 'नार' को देनेवाला 'नारद' है—'**नारं ददातीति नारदः**'। इसलिये अप्तत्त्वके उत्पादक स्वयम्भू भूमण्डलको नारद कहना युक्तियुक्त है। यह सब सृष्टिका वर्णन मनुस्मृति प्रथमाध्यायके आरम्भमें इसी रूपमें मिलता है—

ततः स्वयम्भूर्भगवानव्यक्तो व्यञ्जयन्निदम्।
महाभूतादिवृत्तौजाः प्रादुरासीत्तमोनुदः॥

× × ×

सोऽभिध्याय शरीरात् स्वात्सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः।
अप एव ससर्जादौ तासु बीजमवासृजत्॥
तदण्डमभवद्धैमं सहस्रांशुसमप्रभम्।
तस्मिञ्जज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः॥
आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः।
ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः॥

× × ×

तस्मिन्नण्डे स भगवानुषित्वा परिवत्सरम्।
स्वयमेवात्मनो ध्यानात्तदण्डमकरोद् द्विधा॥
ताभ्यां स शकलाभ्यां च दिवं भूमिं च निर्ममे।
मध्ये व्योम दिशश्चाष्टावपां स्थानं च शाश्वतम्॥

संक्षेपमें इस सबका तात्पर्य यही है कि सृष्टिके आरम्भमें सबसे पूर्व 'स्वयम्भू' प्रादुर्भूत हुआ, उसने प्रजासृष्टिकी इच्छासे सबसे पहले अपने शरीरसे अप् (आपोमय परमेष्ठिमण्डल) को उत्पन्न किया (इसे ही पौराणिक चित्रमें क्षीरसमुद्र कहा गया है।) और उसमें भावी सृष्टिका बीज रखा। वह बीज सुवर्णका अण्डा बना, उसके हजार किरणें थीं और सब किरणोंमें समान कान्ति थी। (इसे ब्रह्माण्डगोलक या त्रिलोकमण्डल समझना चाहिये।) उसके मध्यमें सर्वलोक-पितामह ब्रह्मा प्रादुर्भूत हुए। (स्मरण रहे कि पद्मज ब्रह्मा सब लोकोंके पिता हैं, किंतु ये ब्रह्मा उनके भी उत्पादक हैं, इसलिये इन्हें (सूर्यरूप ब्रह्माको) पितामह कहा गया है।) आगे इन ब्रह्माका ही नाम—'नारायण' बताया गया है और 'नारायण' शब्दकी व्युत्पत्ति इस प्रकार की गयी है कि नर (स्वयम्भू) के पुत्र अप् 'नार' हैं, उस नार (आपोमयमण्डल) में रहनेके कारण ये पितामह ब्रह्मा नारायण हैं। (इस सब वर्णनपर सूक्ष्म दृष्टिपात कर लेनेके अनन्तर इस विषयमें कोई संदेह नहीं रह सकता कि पूर्वोक्त पौराणिक चित्रमें जिन्हें क्षीर-समुद्रशायी विष्णु कहा गया है, वे ही मनुस्मृतिमें 'पितामह' ब्रह्मा कहलाये

हैं।) 'नारायण' नाम दोनों जगह समान हैं। मनुभगवान्‌ने स्वयम्भूसे आरम्भ किया है, स्वयम्भूका 'ब्रह्मा' नाम लोकप्रसिद्ध है और आगे-आगेके मण्डलोंमें जितनी शक्तियाँ उत्पन्न होती हैं, वे आदिके मण्डलकी शक्तिसे भिन्न नहीं हैं। अथवा यों कहिये कि आदित्यमण्डलका जो अभिमानी देव है, वही भिन्न-भिन्न नाम-रूपोंसे आगे उत्पन्न होनेवाले मण्डलोंका भी अभिमानी है। वह उनमें भेददृष्टि सर्वथा नहीं करता। इसी अद्वैततत्त्वके निर्वाहके लिये भगवान् मनुने 'ब्रह्मा' नाम ही सर्वत्र रख दिया है, किंतु व्यवहार-सांकर्य मिटानेके लिये पुराणोंमें 'विष्णु' और 'ब्रह्मा' पृथक्-पृथक् नाम कर दिये गये हैं, अद्वैत सबको इष्ट है। इसलिये—

एकमूर्तिस्त्रयो देवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।

—यह सिद्धान्त सर्वत्र ही उद्‌घोषित है। पितामह ब्रह्माने वर्षभर उस अण्डेमें निवास कर अपने ध्यानसे उस अण्डेके दो विभाग कर दिये। उन्हीं दोनों टुकड़ोंसे द्यु (स्वर्लोक) और पृथ्वी (भूलोक)को बनाया। (यही भूलोक पुराणोंमें पद्म-रूपसे निरूपित हुआ है और इसपर एक दूसरे ब्रह्मा प्रादुर्भूत होते हैं, जिनका वर्णन मनुस्मृतिमें आगे चलकर श्लोक ३२में 'विराट्' नामसे आता है।) तैत्तिरीय उपनिषद्‌में जो **'तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः। आकाशाद्वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः। अद्‌भ्यः पृथिवी'** आदि कहा गया है, वहाँ इतनी विशेषता है कि 'अप्' शब्दसे हमारी त्रिलोकीके अन्तरिक्षको लिया है, जिसे पूर्वोक्त मनुस्मृतिके श्लोकोंमें भी **'अपां स्थानम्'** नामसे बताया गया है। यह सूर्यमण्डलसे उत्पन्न है तथा पृथ्वी और सूर्यके मध्यमें स्थित है।

सृष्टिका मूल तत्त्व क्या है—इस विषयमें प्राचीन आचार्योंके तीन प्रकारके भिन्न मत हैं। कोई प्रकृतिको मूलतत्त्व कहते हैं, उनका वह 'प्राकृतवाद' सप्तम मार्कण्डेयपुराणमें प्रदर्शित हुआ है। कोई आग्नेय प्राणको मूलतत्त्व मानते हैं, वह मत अष्टम अग्निपुराणमें बताया गया है तथा कोई अन्य आचार्य सौर प्राणको मूलतत्त्व बताते हैं, उनका सिद्धान्त नवम 'भविष्य-पुराण' ने बताया है। यों तीन मत दिखाकर दशम पुराण ब्रह्मवैवर्तद्वारा भगवान् व्यासने अपना सिद्धान्त बता दिया कि यह सब ब्रह्मका विवर्त है। अर्थात् मूलतत्त्व 'ब्रह्म' है, उसका जो अतात्त्विक अन्यथाभाव समझा जाता है, वही सृष्टि है। यों विवर्तवादको उत्तरपक्ष रखते हुए इस मूलतत्त्व-विषयक मतभेदको दूर किया है। वह ब्रह्म मन और वाक्‌से परे हैं, जो सृष्टि हमें प्रतीत होती है, उसमें उस परब्रह्मका 'अवतार' होता है। उसी अवतारके द्वारा वह परब्रह्म उपास्य भी होता है, इसलिये एकादशसे आरम्भ कर षोडश-पर्यन्त छः पुराण अवतारप्रतिपादक हैं। इनमें लिङ्ग और स्कन्द—ये दो भगवान् शंकरके अवतार कहे जाते हैं और वराह, वामन, कूर्म और मत्स्य—ये चार अवतार भगवान् विष्णुके। सृष्टि-प्रक्रियामें जिन अवतारोंका उपयोग है, उन्हींके नामसे यहाँ पुराणोंके नाम रखे गये हैं और जिस क्रमसे इन अवतारोंका सृष्टि-प्रक्रियामें उपयोग है, वही क्रम उन पुराणोंका माना गया है। इस सृष्टिचक्रमें घूमनेवाले जीवकी किस-किस कर्मके अनुसार क्या-क्या गति होती है— यह 'आयति' प्रकरण सत्रहवें 'गरुडपुराण'में दिखाया गया है, जिससे कि सृष्टिका 'परिणाम' (जीवका कर्मफलभोगरूप प्रयोजन) प्रतीत होता है और इस सब गतिका 'आयतन' क्या है तथा सृज्यमान वस्तुकी सीमा कितनी है—यह निरूपण अठारहवें **'ब्रह्माण्डपुराण'**में कर दिया गया है। इस प्रकार क्रमसे अठारह पुराणों या एक ही पुराणके अठारह प्रकरणोंद्वारा सृष्टिविधानकी पूर्णता हो जाती है और इसी विद्यामें सब विद्याओंका अन्तर्भाव है।

साधु कौन ? असाधु कौन ?

सत्कथासु प्रवर्तन्ते सज्जना ये जगद्धिताः।। निन्दायां कलहे वापि ह्यसन्तः पापतत्पराः।

(नारद० १।१।५६)

'जो संसारका हित करनेवाले साधु पुरुष हैं, वे ही उत्तम कथाओंके कहने-सुननेमें प्रवृत्त होते हैं। पापपरायण दुष्ट तो सदा दूसरोंकी निन्दा और दूसरोंके साथ कलह करनेमें ही लगे रहते हैं।'

हिंदू-संस्कृतिके पुराणोंपर एक दृष्टि

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

भारतीय संस्कृत-साहित्य-सागर अनन्त रत्नराशिसे पूर्ण है। उन रत्नोंमें पुराणका स्थान अत्यन्त महत्त्वका है। पुराण-साहित्य वेदकी भाँति भगवान्‌का निःश्वास रूप ही है। श्रीमद्भागवत साक्षात् भगवान्‌का स्वरूप है। इसीसे भक्त-भागवतगण इसकी भगवद्भावनासे श्रद्धा-भक्ति-पूर्वक पूजा किया करते हैं। भगवान् व्यासदेव-सरीखे महापुरुषको जिसकी रचनासे ही परम शान्ति मिली, जिसमें ज्ञान-भक्तिका परम रहस्य बड़ी ही मधुरताके साथ अभिव्यक्त हुआ है, उस श्रीमद्भागवतके सम्बन्धमें क्या कहा जाय? इसके प्रत्येक अङ्गसे भगवद्भावपूर्ण पारमहंस्य ज्ञान-सुधासरिताकी बाढ़ आ रही है—**'यस्मिन् पारमहंस्यमेकममलं ज्ञानं परं गीयते।'**—भगवान्‌के मधुर प्रेमका छलकता हुआ सागर है श्रीमद्भागवत। इसीसे भावुक भक्तगण इसमें सदा अवगाहन करते रहते हैं। परम मधुर भगवद्-रससे भरा हुआ—**'स्वादु स्वादु पदे पदे'**—ऐसा ग्रन्थ बस यही है। इसकी कहीं तुलना नहीं है। विद्याका तो यह भंडार ही है। **'विद्या भागवतावधिः'** प्रसिद्ध है। इस परमहंस-संहिताका पर्याप्त आनन्द तो उन्हीं सौभाग्यशाली भक्तोंको किसी अंशमें मिल सकता है, जो हृदयकी सच्ची श्रद्धाके साथ केवल भगवत्प्रेमकी प्राप्तिके लिये ही भक्तिपूर्वक इसका पारायण करते हैं और अपनी विद्या-बुद्धिसे नहीं, वरं केवल भगवत्कृपाके बलसे ही इसका मर्म हृदयङ्गम करना चाहते हैं।

स्कन्दपुराण समस्त पुराणोंमें सबसे बड़ा है। यह सात खण्डोंमें विभक्त है। इसमें ८११०० श्लोक हैं। सात खण्डोंके नाम हैं—माहेश्वरखण्ड, वैष्णवखण्ड, ब्रह्मखण्ड, काशीखण्ड, अवन्ती, नागर और प्रभास-खण्ड। इनमें भी अनेक अवान्तर खण्ड हैं। इसके अतिरिक्त एक संहितात्मक स्कन्दपुराण पृथक् है। उसके सम्बन्धमें शंकरसंहिताके 'हालास्य-माहात्म्य'में लिखा है कि 'श्रुतिसार स्कन्दपुराण' ६ संहिताओं और ५० खण्डोंमें विभक्त है। इसकी संहिताओंके नाम हैं—१-सनत्कुमार-संहिता, २-सूतसंहिता, ३-शंकरसंहिता, ४-वैष्णवसंहिता ५-ब्रह्मसंहिता और ६-सौरसंहिता। इन संहिताओंकी श्लोक-संख्या क्रमशः ३६,०००; ६,०००; ३०,०००; ५ ३,००० और १,००० है। इस प्रकार कुल मिलाव स्कन्दपुराणकी श्लोक-संख्या भी ८१,००० होती है संहिताओंमेंसे पहली तीन उपलब्ध हैं। कहते हैं कि ने छहों संहिताएँ हैं। सूतसंहितापर तो आचार्योंके भाष्य भी संहितात्मक स्कन्दपुराणको कोई उपपुराण कहते हैं, कोई और कोई इसे महापुराणका ही अङ्ग मानते हैं। जो कुछ इसकी संहिताएँ हैं बड़े महत्त्वकी।

इस महापुराणमें माहात्म्यकथाओंके प्रसंगमें जो इतिहास तथा जीवनचरित्र आये हैं, वे बड़े महत्त्वके हैं। लौकिक, पारलौकिक, पारमार्थिक, कल्याणकारी उपदेश भरे हैं। विभिन्न प्रसंगोंमें धर्म, सदाचार, योग, भक्ति आदिका बड़ा ही सुन्दर निरूपण किया गया है। तीर्थ वर्णनमें जो भूवृत्तान्त आया है, वह तो अत्यन्त आश्चर्यक और भूगोलके विद्वानोंके लिये अत्यन्त आदरणीय विचारणीय विषय है।

यह स्कन्दपुराण पता नहीं, कितने अतीत युगोंकी अ अमूल्य गाथाओंको अपने वक्षःस्थलपर धारण किये, वि निर्मल नद-नदी-सरित्-सागर-शैलादिका विशद वर्णन प्र किये, कितने पुण्यतीर्थ, पुण्याश्रम, पुण्यायतन और वि शत-शत कृतार्थ-जीवन ऋषि-महर्षि, साधु-महात्मा, र भक्तोंकी पुण्यमयी चारु चरित्रमालाओंसे समलंकृत होकर अ भी भारतीयोंका भक्ति-भाजन हो रहा है। आज भी भार जीवनमें, घर-घरमें इसमें वर्णित आचारों, पद्धतियों, व्रतों सिद्धान्तोंका कितना प्रचार है—यह देखकर आश्चर्यचकि हृदयसे इसके प्रति जीवन श्रद्धासे झुक जाता है।

मार्कण्डेय और ब्रह्मपुराणमें ऐसे अनेकों म साधन,उपदेश और आदर्श चरित्र भरे हैं, जिनसे मनुष्य स ही अपने अभ्युदय तथा निःश्रेयसका पथ प्राप्त कर सकता सत्यके पालनमें महाराज हरिश्चन्द्रका इतिहास महान् आद स्वरूप है। विपद्ग्रस्तोंको सुख पहुँचानेके लिये महा विपश्चित्का त्याग अपूर्व प्रभावोत्पादक है। ब्राह्मणकुमार

प्राण-रक्षा करनेमें महादेवी पार्वतीजीके तपःसमर्पणका इतिहास बड़ा ही पवित्र शिक्षाप्रद है। धर्मके पक्षमें दृढ़ता और मैत्रीधर्मके पालनमें वैश्ययुवक मणिकुण्डलका चरित्र अपनी जोड़ी नहीं रखता। महाशक्तिकी उपासनासे और समस्त पृथक्-पृथक् शक्तियोंकी पुञ्जीभूत एक महान् शक्तिकी सहायतासे विश्वदुःखदायी असुरोंका सम्पूर्ण समाज कैसे सहज ही नष्ट हो सकता है—इसका बड़ा मनोहर और ज्ञानगर्भ उपदेश देवीमाहात्म्य—(दुर्गासप्तशती) में प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त पतिव्रता-माहात्म्य, तीर्थमाहात्म्य, भगवद्-भक्ति, ज्ञान, योग, सदाचार और लीलामय भगवान्के पवित्र चरित्रोंका बड़ा ही रोचक, मनोहर, गम्भीर और मार्मिक वर्णन इन पवित्र पुराणोंमें आया है। पाठकोंको विशेष मन लगाकर इनसे लाभ उठाना चाहिये।

इन पुराणोंमें नारदमहापुराण और विष्णुपुराण बड़े महत्त्वके सात्त्विक पुराण माने जाते हैं। नारदपुराणमें इतने महत्त्वके विषय हैं कि उन्हें पढ़-सुनकर चमत्कृत होना पड़ता है। पूर्ण विष्णुपुराण भी तेईस हजार श्लोकोंका बताया गया है। वर्तमान उपलब्ध विष्णुपुराण मूल महापुराणका पूर्वभाग है, जो वर्णनके अनुसार ही प्राप्त है। 'विष्णुधर्मोत्तरपुराण'को विष्णुपुराणका उत्तरभाग बताया गया है और हमारे विश्वासके अनुसार है भी यही बात।

नारदपुराणमें पुराणोचित महत्त्वके प्रसंग तो हैं ही, उसमें वेदके छः अङ्ग—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्यौतिष (सिद्धान्त, होरा और संहिता) और छन्दका भी बड़ा विशद महत्त्वपूर्ण और मौलिक वर्णन है। इससे पता लगता है कि इसमें कितने महत्त्वके विषय हैं। इस एक नारदपुराणके अध्ययनसे ही सैकड़ों ज्ञातव्य विषयोंका सहज ही ज्ञान हो सकता है। इनमें आध्यात्मिक प्रसंग भी बहुत महत्त्वके हैं, जिनके श्रद्धापूर्वक अध्ययन, मनन और आचरणसे मनुष्यको मानव-जीवनकी चरम सफलता सहज ही प्राप्त हो सकती है।

इसके अतिरिक्त नारदपुराणके तीसरे पादमें सकाम उपासनाका भी बड़ा विशद वर्णन है, जो सकाम उपासकोंके लिये बड़े महत्त्वका है। यद्यपि मानवजीवनका प्रधान उद्देश्य 'भगवत्प्राप्ति' ही है, इसलिये उपासनामें सकाम-भाव रखना कल्याणकारी पुरुषोंके लिये कदापि वाञ्छनीय नहीं है। यह एक प्रकारकी अज्ञता ही है। अपनी-अपनी रुचि, अधिकार तथा परिस्थितिके अनुसार उपासना अवश्य करनी चाहिये, परंतु करनी चाहिये निष्कामभावसे भगवत्प्रीत्यर्थ ही। तथापि सकाम-उपासना पाप नहीं है, प्रत्युत आधिभौतिक साधनोंकी अपेक्षा लौकिक सिद्धि प्राप्त करनेका सुगम तथा श्रेष्ठ साधन है, क्योंकि इससे प्रतिबन्धका नाश होकर नवीन प्रारब्धका निर्माण सम्भव है। अवश्य ही यह साधन होना चाहिये सात्त्विक देवताओंका तथा सात्त्विक विधि-विधानके अनुसार ही। तामस देवासुरोंकी स्थापना तो अधोगतिमें ले जानेवाली होती है। सकाम-उपासना करनी हो तो श्रीभगवान्के किसी एक नाम-रूपकी करनी चाहिये। भगवान्की सकाम आराधनासे सकाम उद्देश्यकी सिद्धि होने या भगवान्की मङ्गलमयी इच्छासे सिद्धि न होनेपर भी अन्तःकरणकी शुद्धि, भक्तिकी प्राप्ति और अन्तमें भगवत्प्राप्ति हो सकती है। भगवान्ने स्वयं कहा है—**'मद्भक्ता यान्ति मामपि।'** (गीता ७। २३)

ब्रह्मवैवर्तपुराण ग्रन्थ वैष्णवप्रिय होनेके साथ ही कई दृष्टियोंसे सबके लिये ही उपयोगी तथा मङ्गलप्रद है। इसमें भगवान् श्रीकृष्णकी और उनकी अभिन्नस्वरूपा प्रकृति—ईश्वरी श्रीराधाकी सर्वप्रधानताके साथ ही समस्त शक्तिमानोंकी तथा शक्तियोंकी एकताका, महिमाका, स्वरूपादिका तथा उनकी साधना-उपासनाका बड़ा ही विशद तथा सुन्दर प्रतिपादन है। साथ ही इसके सभी खण्डोंमें इस प्रकारके बहुत-से सिद्ध मन्त्रों, कवचों और स्तोत्रोंका वर्णन उनके इतिहासके साथ है, जिससे पता लगता है कि संकट-निवृत्ति, मनोरथ-प्राप्ति, विपत्ति-विनाश, लक्ष्मी-प्राप्ति, भक्ति-प्राप्ति तथा भगवत्प्राप्तिके लिये इन मन्त्रादिके श्रद्धा-विधिपूर्वक प्रयोगसे महान् लाभ हो सकता है। जैसे—ब्रह्मखण्ड, अध्याय ३८-'ब्रह्माण्डपावन कृष्ण-कवच।' इससे रोग-भयका नाश तथा सवार्थसिद्धि होती है। प्रकृतिखण्ड, अध्याय ४-**'ॐ ऐं ह्रीं श्रीं सरस्वत्यै बुधजनन्यै स्वाहा'**-इस मन्त्र तथा 'सरस्वती-कवच'के प्रयोगसे मनुष्य शिक्षाके क्षेत्रमें परम सफल विद्वान्, कवि-सम्राट् तथा विश्वविजयी होता है।

प्रकृतिखण्ड अध्याय ३९-**'ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं कमलवासिन्यै स्वाहा'**— इस मन्त्र तथा 'महालक्ष्मीस्तोत्र' के प्रयोगसे स्थिर लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है।

प्रकृतिखण्ड, अध्याय ५६-श्रीराधिकाके 'जगन्मङ्गल-कवच'से सर्वसंकटोंका नाश तथा राधाकृष्णके द्वारा श्रीराधामाधव-प्रेमकी प्राप्ति होती है।

गणपतिखण्ड, अध्याय ३१-'**ॐ श्रीं नमः श्रीकृष्णाय परिपूर्णतमाय स्वाहा**'—इस मन्त्र एवं 'त्रैलोक्यविजयकवच' के प्रयोगसे घोर संग्राममें पूर्ण विजय तथा मोहपर विजय प्राप्त होती है और श्रीकृष्णप्रेमकी प्राप्ति होती है।

गणपतिखण्ड, अध्याय ३६-'**ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं कालिकायै स्वाहा**'—इस मन्त्र तथा 'कालीकवच'के प्रयोगसे शत्रुनाश, विजय और राज्यकी प्राप्ति होती है।

गणपतिखण्ड, अध्याय ३८-'महालक्ष्मीकवच'के प्रयोगसे सम्पूर्ण सम्पत्ति मिलती है।

गणपतिखण्ड, अध्याय ३९-'ब्रह्माण्डविजयकवच'के प्रयोगसे महान् शत्रुपर विजय प्राप्ति होती है। भगवान् श्रीशंकरने इस कवचके प्रयोगसे त्रिपुरासुरपर विजय पायी थी।

श्रीकृष्ण-जन्मखण्ड, अध्याय १२-'कृष्णकवच'के प्रयोगसे बच्चोंकी अग्नि, विष, कुदृष्टि (नजर) सर्प तथा अपदेवताओंके भयसे रक्षा होती है।

श्रीकृष्णजन्मखण्ड अध्याय १९-'श्रीकृष्णस्तोत्र'के प्रयोगसे शत्रु-सेनाका क्षय होता है तथा प्रयोगकर्ताकी युद्धमें सर्वत्र विजय होती है और सहज ही रक्षा होती है।

यह ब्रह्मवैवर्तपुराण श्रद्धा-सम्पन्न पुरुषोंके लिये दैवी साधनोंके द्वारा देशको वर्तमान महान् संकटसे मुक्त कराने, तन-धन-जनकी रक्षा कराने, खोयी हुई शक्ति-सम्पत्तिको पुनः प्राप्त कराने, संग्राममें आसुरी शक्तिका शीघ्र क्षय कराने एवं रणमें पूर्ण विजय प्राप्त करानेके महान् कार्यमें बड़ा ही उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

जो साधक भक्त भगवती श्रीराधा, दुर्गा, महालक्ष्मी, सरस्वती, काली आदि महान् शक्तियों तथा भगवान् श्रीकृष्ण, शंकर, गणेश आदि महान् भगवत्स्वरूपोंकी कृपा प्राप्त करने, श्रीराधामाधवकी परमभक्ति तथा प्रेमकी प्राप्ति करनेकी पारमार्थिक दृष्टिसे, विषयासक्ति तथा विषय-कामनासे रहित होकर इसमें उल्लिखित साधनोंके अनुसार प्रयत्न करेंगे, उन्हें उनकी श्रद्धामयी साधनाके अनुसार परम पारमार्थिक लाभ होगा, इसमें कोई संदेह नहीं है।

शिवपुराण एक प्रधान पुराण है। इसमें परात्पर परब्रह्म प्रभुके कल्याणमय शिवस्वरूपके महत्त्व, रहस्य, लीलाविहार, अवतार तथा उनकी पूजा-पद्धतिका बड़ा ही विशद वर्णन है और भगवान् शिवकी परात्परता, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, त्रिदेवोंकी एकता, शक्तिकी प्रधानता एवं शक्ति-शक्तिमान्‌की अभिन्नता, सत्संग, सदाचार, भक्तियोग, ज्ञान आदिका बड़ा ही सुन्दर निरूपण हुआ है।

श्रीदेवीभागवत-पुराणके विविध विचित्र कथा-प्रसंगोंमें देवी-माहात्म्य, देवी-आराधनाकी विधि तथा देवी-आराधनासे प्राप्त आश्चर्यमय शुभ परिणामोंके मधुरातिमधुर विषय भरे पड़े हैं। पुत्र कुपुत्र हो जाता है, पर माता कभी कुमाता नहीं होती। वह तो सदा अपनी वात्सल्य-स्नेह-सुधा-रस-धारासे संतानके जीवनको अभिषिक्त करती ही रहती है। यहाँ भी यही बात है। यह भारतीय आर्यधर्मकी विशेषता है कि इसमें सच्चिदानन्दपरात्पर ब्रह्मकी मातृरूपमें आराधना की गयी है और यह आराधना कल्पित आराधना—पद्धतिमात्र नहीं है। वस्तुतः ही अनन्त विचित्र मातृरूपोंमें सच्चिदानन्दमय परात्पर तत्त्व प्रकट है। भक्तोंने उनकी प्रत्यक्ष अनुभूति की है, अब भी करते हैं। समस्त क्लेशोंका नाश, समस्त विघ्नोंकी निवृत्ति, सम्पूर्ण कामनाओंकी पूर्ति, सिद्धि-सफलताकी प्राप्ति, परम वैराग्य और तत्त्व-ज्ञानका उदय, भक्ति-प्रेमकी सुधा-धारामें अवगाहन—सभी अत्यन्त दुर्लभ-से-दुर्लभ पदार्थोंकी उपलब्धि माताकी आराधना-उपासनासे सहज ही हो जाती है, इसमें तनिक भी संदेह नहीं। अतः पुराणोंका परिशीलन सभी प्रकार कल्याणदायक है।

सत्सङ्गदेवार्चनसत्कथासु हितोपदेशे निरतो मनुष्यः।
प्रयाति विष्णोः परमं पदं यद्देहावसानेऽच्युततुल्यतेजाः॥ (नारद० १।१।६३)

'जो मानव सत्सङ्ग, देवपूजा, पुराणकथा और हितकारी उपदेशमें तत्पर रहता है, वह इस देहका नाश होनेपर भगवान् विष्णुके समान तेजस्वी स्वरूप धारण करके उन्हींके परम धाममें चला जाता है।'

मुक्तिका उपाय

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

पुराण भारतीय संस्कृतिकी अमूल्य निधि है। पुराणोंमें मानव-जीवनको ऊँचा उठानेवाली अनेक सरल, सरस, सुन्दर और विचित्र-विचित्र कथाएँ भरी पड़ी हैं। उन कथाओंका तात्पर्य राग-द्वेषरहित होकर अपने कर्तव्यका पालन करने और भगवान्‌को प्राप्त करनेमें ही है। पद्मपुराणके भूमिखण्डमें ऐसी ही एक कथा आती है।

अमरकण्टक तीर्थमें सोमशर्मा नामके एक ब्राह्मण रहते थे। उनकी पत्नीका नाम था सुमना। वह बड़ी साध्वी और पतिव्रता थी। उनके कोई पुत्र नहीं था और धनका भी उनके पास अभाव था। पुत्र और धनका अभाव होनेके कारण सोमशर्मा बहुत दुःखी रहने लगे। एक दिन अपने पतिको अत्यन्त चिन्तित देखकर सुमनाने कहा कि 'प्राणनाथ! आप चिन्ताको छोड़ दीजिये; क्योंकि चिन्ताके समान दूसरा कोई दुःख नहीं है। स्त्री, पुत्र और धनकी चिन्ता तो कभी करनी ही नहीं चाहिये। इस संसारमें ऋणानुबन्धसे अर्थात् किसीका ऋण चुकानेके लिये और किसीसे ऋण वसूल करनेके लिये ही जीवका जन्म होता है। माता, पिता, स्त्री, पुत्र, भाई, मित्र, सेवक आदि सब लोग अपने-अपने ऋणानुबन्धसे ही इस पृथ्वीपर जन्म लेकर हमें प्राप्त होते हैं। केवल मनुष्य ही नहीं, पशु-पक्षी भी ऋणानुबन्धसे ही प्राप्त होते हैं।'

'संसारमें शत्रु, मित्र और उदासीन—ऐसे तीन प्रकारके पुत्र होते हैं। शत्रु-स्वभाववाले पुत्रके दो भेद हैं। पहला, किसीने पूर्वजन्ममें दूसरेसे ऋण लिया, पर उसको चुकाया नहीं तो दूसरे जन्ममें ऋण देनेवाला उस ऋणीका पुत्र बनता है। दूसरा, किसीने पूर्वजन्ममें दूसरेके पास अपनी धरोहर रखी, पर जब धरोहर देनेका समय आया, तब उसने धरोहर लौटायी नहीं, हड़प ली, तो दूसरे जन्ममें धरोहरका स्वामी उस धरोहर हड़पनेवालेका पुत्र बनता है। ये दोनों ही प्रकारके पुत्र बचपनसे माता-पिताके साथ वैर रखते हैं और उनके साथ शत्रुकी तरह बर्ताव करते हैं। बड़े होनेपर वे माता-पिताकी सम्पत्तिको व्यर्थ ही नष्ट कर देते हैं। जब उनका विवाह हो जाता है, तब वे माता-पितासे कहते हैं कि यह घर, खेत आदि सब मेरा है, तुमलोग मुझे मना करनेवाले कौन हो? इस तरह वे कई प्रकारसे माता-पिताको कष्ट देते हैं। माता-पिताकी मृत्युके बाद वे उनके लिये श्राद्ध-तर्पण आदि भी नहीं करते। मित्र-स्वभाववाला पुत्र बचपनसे ही माता-पिताका हितैषी होता है। वह माता-पिताको सदा संतुष्ट रखता है और स्नेहसे, मीठी वाणीसे उनको सदा प्रसन्न रखनेकी चेष्टा करता है। माता-पिताकी मृत्युके बाद वह उनके लिये श्राद्ध-तर्पण, तीर्थयात्रा, दान आदि भी करता है। उदासीन-स्वभाववाला पुत्र सदा उदासीनभावसे रहता है। वह न कुछ देता है और न कुछ लेता है। वह न रुष्ट होता है, न संतुष्ट; न सुख देता है, न दुःख*। इस प्रकार जैसे पुत्र तीन प्रकारके होते हैं, ऐसे ही माता, पिता, पत्नी, पुत्र, भाई आदि और नौकर, पड़ोसी, मित्र तथा गाय, भैंस, घोड़े आदि भी तीन प्रकारके (शत्रु, मित्र और उदासीन) होते हैं। इन सबके साथ हमारा सम्बन्ध ऋणानुबन्धसे ही होता है।'

'प्रियतम! जिस मनुष्यको जितना धन मिलना है, उसको बिना परिश्रम किये ही उतना धन मिल जाता है और जब धन जानेका समय आता है, तब कितनी ही रक्षा करनेपर भी वह चला जाता है—ऐसा समझकर आपको धनकी चिन्ता नहीं करनी चाहिये। वास्तवमें धर्मके पालनसे ही पुत्र और धनकी प्राप्ति होती है। धर्मका आचरण करनेवाले मनुष्य ही संसारमें सुख पाते हैं। इसलिये आप धर्मका अनुष्ठान करें। जो मनुष्य मन, वाणी और शरीरसे धर्मका आचरण करता है, उसके लिये संसारमें कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं रहती।'

ऐसा कहनेके बाद सुमनाने विस्तारसे धर्मका स्वरूप तथा उसके अङ्गोंका वर्णन किया। उसको सुनकर सोमशर्माने

* कोई व्यक्ति किसी सन्तकी खूब लगनसे सेवा करता है। अन्तसमयमें किसी कारणसे सन्तको उस सेवककी याद आ जाय तो वह उस सेवक घरमें पुत्ररूपसे जन्म लेता है और उदासीनभावसे रहता है।

प्रश्न किया कि 'तुम्हें इन सब गहरी बातोंका ज्ञान कैसे हुआ ?' सुमनाने कहा—'आप जानते ही हैं कि मेरे पिताजी धर्मात्मा और शास्त्रोंके तत्त्वको जाननेवाले थे, जिससे साधुलोग भी उनका आदर किया करते थे। वे खुद भी अच्छे-अच्छे सन्तोंके पास जाया करते तथा सत्संग किया करते थे। मैं उनकी एक ही बेटी होनेके कारण वे मेरेपर बड़ा स्नेह रखा करते तथा अपने साथ मुझे भी सत्संगमें ले जाया करते थे। इस प्रकार सत्संगके प्रभावसे मुझे भी धर्मके तत्त्वका ज्ञान हो गया।'

यह सब सुनकर सोमशर्माने पुत्रकी प्राप्तिका उपाय पूछा। सुमनाने कहा कि 'आप महामुनि वसिष्ठजीके पास जायँ और उनसे प्रार्थना करें। उनकी कृपासे आपको गुणवान् पुत्रकी प्राप्ति हो सकती है।' पत्नीके ऐसा कहनेपर सोमशर्मा वसिष्ठजीके पास गये। उन्होंने वसिष्ठजीसे पूछा कि 'किस पापके कारण मुझे पुत्र और धनके अभावका कष्ट भोगना पड़ रहा है ?' वसिष्ठजीने कहा —'पूर्वजन्ममें तुम बड़े लोभी थे तथा दूसरोंके साथ सदा द्वेष रखते थे। तुमने कभी तीर्थयात्रा, देवपूजन, दान आदि शुभकर्म नहीं किये। श्राद्धका दिन आनेपर तुम घरसे बाहर चले जाते थे। धन ही तुम्हारा सब कुछ था। तुमने धर्मको छोड़कर धनका ही आश्रय ले रखा था। तुम रात-दिन धनकी ही चिन्तामें लगे रहते थे। तुम्हें अरबों-खरबों स्वर्णमुद्राएँ प्राप्त हो गयीं, फिर भी तुम्हारी तृष्णा कम नहीं हुई, प्रत्युत बढ़ती ही रही। तुमने जीवनमें जितना धन कमाया, वह सब जमीनमें गाड़ दिया। स्त्री और पुत्र पूछते ही रह गये; किंतु तुमने उनको न तो धन दिया और न धनका पता ही बताया। धनके लोभमें आकर तुमने पुत्रका स्नेह भी छोड़ दिया। इन्हीं कर्मोंके कारण तुम इस जन्ममें दरिद्र और पुत्रहीन हुए हो। हाँ, एक बार तुमने घरपर अतिथि-रूपसे आये एक विष्णुभक्त और धर्मात्मा ब्राह्मणकी प्रसन्नता-पूर्वक सेवा की। उनके साथ तुमने अपनी स्त्रीसहित एकादशी-व्रत रखा और भगवान् विष्णुका पूजन भी किया। इस कारण तुम्हें उत्तम ब्राह्मण-वंशमें जन्म मिला है। विप्रवर ! उत्तम स्त्री, पुत्र, कुल, राज्य, सुख, मोक्ष आदि दुर्लभ वस्तुओंकी प्राप्ति भगवान् विष्णुकी कृपासे ही होती है। अतः तुम भगवान् विष्णुकी ही शरणमें जाओ और उन्हींका भजन करो।'

वसिष्ठजीके द्वारा इस प्रकार समझाये जानेपर सोमशर्मा अपनी स्त्री सुमनाके साथ बड़ी तत्परतासे भगवान्‌के भजनमें लग गये। उठते, बैठते, चलते, सोते आदि सब समयमें उनकी दृष्टि भगवान्‌की तरफ ही रहने लगी। बड़े-बड़े विघ्न आनेपर भी वे अपने साधनसे विचलित नहीं हुए। इस प्रकार उनकी लगनको देखकर भगवान् उनके सामने प्रकट हो गये। भगवान्‌के वरदानसे उनको मनुष्यलोकके उत्तम भोगोंकी और भगवद्भक्त तथा धर्मात्मा पुत्रकी प्राप्ति हो गयी।

सोमशर्माके पुत्रका नाम सुव्रत था। सुव्रत बचपनसे ही भगवान्‌का अनन्य भक्त था। खेल खेलते समय भी उसका मन भगवान् विष्णुके ध्यानमें लगा रहता था। जब माता सुमना उससे कहती कि 'बेटा ! तुझे भूख लगी होगी, कुछ खा ले', तब वह कहता कि 'माँ ! भगवान्‌का ध्यान महान् अमृतके समान है, मैं तो उसीसे तृप्त रहता हूँ !' जब उसके सामने मिठायी आती, तो वह उसको भगवान्‌के ही अर्पण कर देता और कहता कि 'इस अन्नसे भगवान् तृप्त हों।' जब वह सोने लगता, तब भगवान्‌का चिन्तन करते हुए कहता कि 'मैं योग-निद्रापरायण भगवान् कृष्णकी शरण लेता हूँ।' इस प्रकार भोजन करते, वस्त्र पहनते, बैठते और सोते समय भी वह भगवान्‌के चिन्तनमें लगा रहता और सब वस्तुओंको भगवान्‌के अर्पण करता रहता। युवावस्था आनेपर भी वह भोगोंमें आसक्त नहीं हुआ, प्रत्युत भोगोंका त्याग करके सर्वथा भगवान्‌के भजनमें ही लग गया। उसकी ऐसी भक्तिसे प्रसन्न होकर भगवान् विष्णु उसके सामने प्रकट हो गये। भगवान्‌ने उससे वर माँगनेके लिये कहा तो वह बोला—'श्रीकृष्ण ! अगर आप मेरेपर प्रसन्न हैं तो मेरे माता-पिताको सशरीर अपने परमधाममें पहुँचा दें और मेरे साथ मेरी पत्नीको भी अपने लोकमें ले चलें।' भगवान्‌ने सुव्रतकी भक्तिसे संतुष्ट होकर उसको उत्तम वरदान दे दिया। इस प्रकार पुत्रकी भक्तिके प्रभावसे सोमशर्मा और सुमना भी भगवद्धामको प्राप्त हो गये।

इस कथामें विशेष बात यह आयी है कि संसारमें किसीका ऋण चुकानेके लिये और किसीसे ऋण वसूल करनेके लिये ही जन्म होता है; क्योंकि जीवने अनेक लोगोंसे लिया है और अनेक लोगोंको दिया है। लेन-देनका यह

व्यवहार अनेक जन्मोंसे चला आ रहा है और इसको बंद किये बिना जन्म-मरणसे छुटकारा नहीं मिल सकता।

संसारमें जिनसे हमारा सम्बन्ध होता है, वे माता, पिता, स्त्री, पुत्र तथा पशु-पक्षी आदि सब लेन-देनके लिये ही आये हैं। अतः मनुष्यको चाहिये कि वह उनमें मोह-ममता न करके अपने कर्तव्यका पालन करे अर्थात् उनकी सेवा करे, उन्हें यथाशक्ति सुख पहुँचाये। यहाँ यह शंका हो सकती है कि अगर हम दूसरेके साथ शत्रुताका बर्ताव करते हैं तो इसका दोष हमें क्यों लगता है; क्योंकि हम तो ऐसा व्यवहार पूर्वजन्मके ऋणानुबन्धसे ही करते हैं ? इसका समाधान यह है कि मनुष्यशरीर विवेकप्रधान है। अतः अपने विवेकको महत्त्व देकर हमारे साथ बुरा व्यवहार करनेवालेको हम माफ कर सकते हैं और बदलेमें उससे अच्छा व्यवहार कर सकते हैं। मनुष्यशरीर बदला लेनेके लिये नहीं है, प्रत्युत जन्म-मरणसे सदाके लिये मुक्त होनेके लिये है। अगर हम पूर्वजन्मके ऋणानुबन्धसे लेन-देनका व्यवहार करते रहेंगे तो हम कभी जन्म-मरणसे मुक्त हो ही नहीं सकेंगे। लेन-देनके इस व्यवहारको बंद करनेका उपाय है—निःस्वार्थभावसे दूसरोंके हितके लिये कर्म करना। दूसरोंके हितके लिये कर्म करनेसे पुराना ऋण समाप्त हो जाता है और बदलेमें कुछ न चाहनेसे नया ऋण उत्पन्न नहीं होता। इस प्रकार ऋणसे मुक्त होनेपर मनुष्य जन्म-मरणसे छूट जाता है।

अगर मनुष्य भक्त सुव्रतकी तरह सब प्रकारसे भगवान्‌के ही भजनमें लग जाय तो उसके सभी ऋण समाप्त हो जाते हैं अर्थात् वह किसीका भी ऋणी नहीं रहता।* भगवद्भजन प्रभावसे वह सभी ऋणोंसे मुक्त होकर सदाके लिये जन्म-मरणके चक्रसे छूट जाता है और भगवान्‌के परमधामको प्राप्त हो जाता है।

पुराण-महिमा

[पूज्यपाद श्रीदेवराहा बाबाजी महाराजके अमृत-वचन]

भारतीय संस्कृतिके मूलाधारके रूपमें वेदोंके अनन्तर पुराणोंका ही सम्मानपूर्ण स्थान है। वेदोंमें वर्णित अगम रहस्योंतक जन-सामान्यकी पहुँच नहीं हो पाती, परंतु भक्तिरस-परिप्लुत पुराणोंकी मङ्गलमयी शोक-निवारिणी, ज्ञान-प्रदायिनी दिव्य कथाओंका श्रवण-मनन, पठन-पाठन कर जन-साधारण भी भक्ति-तत्त्वका अनुपम रहस्य सहज ही जान लेते हैं। वायुपुराणमें कहा है—

यस्मात् पुरा ह्यनतीदं पुराणं तेन तत् स्मृतम्।
निरुक्तमस्य यो वेद सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

(१।२०३)

'प्राचीन कालसे प्राणित होनेके कारण यह पुराण कहा जाता है। जो इसकी व्याख्या जानता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है।'

महाभारतमें कहा है—

'पुराणसंहिताः पुण्याः कथा धर्मार्थसंश्रिताः।'

(आदिपर्व १।१६)

अर्थात् पुराणोंकी पवित्र कथाएँ धर्म और अर्थको देनेवाली हैं। अध्यात्मकी दिशामें अग्रसर होनेवाले कल्याणेच्छु साधकोंको पौराणिक कथाओंके अनुशीलनसे तात्त्विक बोधकी उपलब्धि होती है। साथ ही हृदयमें प्रभु-पाद-पद्मोंकी सच्ची प्रीति अथवा अनुरक्तिकी मन्दाकिनी प्रवाहित हो उठती है। परमात्म-दर्शनके लिये अथवा शारीरिक एवं मानसिक रोग-निवृत्तिके लिये श्रद्धापूर्वक अत्यन्त कल्याणकारी पुराणोंका पारायण करना चाहिये।

पञ्चम वेदके रूपमें दिव्य पौराणिक ज्ञान सर्वप्रथम ब्रह्माजीके द्वारा अभिव्यक्त हुआ—

इतिहासपुराणानि पञ्चमं वेदमीश्वरः।
सर्वेभ्य एव वक्त्रेभ्यः ससृजे सर्वदर्शनः ॥

(श्रीमद्भा० ३।१२।३९)

'इतिहास और पुराण-रूप पाँचवें वेदको उन समर्थ, सर्वज्ञ ब्रह्माजीने अपने सभी मुखोंसे प्रकट किया।'

---

* देवर्षिभूताप्तनृणां पितॄणां न किङ्करो नायमृणी च राजन्। सर्वात्मना यः शरणं शरण्यं गतो मुकुन्दं परिहृत्य कर्तम्॥ (श्रीमद्भा० ११।५।४१)

पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्।
अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः॥

(मत्स्यपुराण ५३। ३)

'ब्रह्माजीने समस्त शास्त्रोंमें सर्वप्रथम पुराणोंका स्मरण-उपदेश किया। पीछे उनके मुखसे वेद प्रकट हुए।'

लोकभाषामें वर्णित होनेके कारण वेदोंकी अपेक्षा पुराण अधिक लोकप्रिय हैं। उनमें प्रतिपादित मधुरातिमधुर आख्यानों एवं कथाओंकी सश्रद्ध चर्चा राजमहलसे लेकर झोपड़ीतक होती है।

राजनीति, धर्मनीति, इतिहास, समाज-विज्ञान, ग्रह-नक्षत्र-विज्ञान, आयुर्वेद, अलङ्कार, व्याकरण, भूगोल, ज्योतिष आदि समस्त विद्याओंका प्रतिपादन पुराणोंमें हुआ है। भारतीय संस्कृतिका विशिष्ट ज्ञान हमें पुराणोंद्वारा प्राप्त होता है। इसके द्वारा भारतीय प्रतिभाका उत्कृष्ट फल प्रतिफलित होता है।

ब्रह्मविष्ण्वर्करुद्राणां माहात्म्यं भुवनस्य च।
ससंहारप्रदानां च पुराणे पञ्चवर्णके॥
धर्मश्चार्थश्च कामश्च मोक्षश्चैवात्र कीर्त्यते।
सर्वेष्वपि पुराणेषु यद्विरुद्धं च यत्फलम्॥

(मत्स्यपु० ५३। ६५-६६)

'पाँच लक्षणोंवाले सभी पुराणोंमें सृष्टि और संहार करनेवाले ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य और रुद्रके तथा भुवनके माहात्म्यका वर्णन किया गया है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका भी इनमें विस्तृत विवेचन किया गया है। इनके विरुद्ध आचरण करनेसे जो फल प्राप्त होता है, उसका भी निरूपण किया गया है।'

अतः पुरुषार्थ-चतुष्टय-प्रदाता दिव्य ज्ञान-कोष पुराणोंका सेवन हमारा परम अभीष्ट होना चाहिये।

आयुष्मतां कथां कीर्तयन्तो माङ्गल्यानीतिहासपुराणानि।

(आश्वलायन, गृह्यसूत्र ४। ६)

चिरंजीवी मनुष्योंकी कथाएँ और माङ्गलिक इतिहास-पुराणोंका पाठ करते हुए समय-यापन करें।

प्रेषक—श्रीमदनजी शर्मा शास्त्री

पुराणोंका महत्त्व

(पूज्यपाद श्रीप्रभुदत्त ब्रह्मचारीजी महाराज)

तुलसीकाननं यत्र यत्र पद्मवनानि च।
पुराणपठनं यत्र तत्र संनिहितो हरिः[1]॥

पुराण शब्दका अर्थ है—जो वृत्तान्त पहले हो गया हो, उसका जिसमें वर्णन हो वही पुराण है। पुराणोंके अनेक भेद हैं—पुराण, महापुराण, उपपुराण आदि।

पहले हम समझते थे कि पुराणोंमें कथाएँ ही होंगी, परंतु जब हमने पुराणोंका श्रवण-अध्ययन किया तब तो हम चकित रह गये। संसारका ऐसा कोई भी ज्ञान नहीं,जो पुराणोंमें न हो। हम व्याकरणका ग्रन्थ केवल अष्टाध्यायीको ही समझते थे, किंतु नारदपुराणमें व्याकरणका श्लोक-बद्ध ऐसा विवरण है कि उसे कण्ठस्थ करके मनुष्य पूर्ण वैयाकरण बन सकता है। जितने काव्य-ग्रन्थ लिखे गये हैं, वे सब पुराणोंकी कथाके ही आधारपर हैं। पुराण तो वेदोंसे भी पुराने हैं। हमने एक बार पुराण-सत्र किया था। यह ३०-४० वर्ष पुरानी बात है। तबसे अबतक हमारे यहाँ निरन्तर पुराणोंकी कथा क्रमशः नित्य-नियमसे होती रहती है।

साक्षात् भगवान्ने ही जीवोंके, संसारसे निस्तारके निमित्त व्यास-रूपसे अवतार ग्रहण करके पुराणोंका व्यास करके संग्रह किया। इन पुराणोंके पढ़ने तथा सुननेसे मनुष्योंके पापोंका क्षय होता है। पुराणोंके पठन-पाठनसे यह धर्म है, यह अधर्म है—इसका ज्ञान होता है, सदाचार क्या है, इसका भी प्रवर्तन होता है और मनुष्योंकी मति भगवान्की भक्तिमें लगती है।

नारदपुराणमें कहा गया है कि जो अठारह पुराणोंको सुनता है अथवा विधानपूर्वक कहता है, उसकी मुक्ति हो जाती है, वह फिर जन्म-मरणके चक्करसे सदा-सर्वदाके लिये छूट जाता है।[2]

१-जहाँ तुलसीका सघन वन हो, जहाँ कमलके कुण्ड हों और जहाँ पुराणोंका नित्य पाठ होता हो, वहाँ श्रीहरिकी संनिधि है।
२-अष्टादश पुराणानि यः शृणोति नरोत्तमः। कथयेद् वा विधानेन नेह भूयः स जायते॥(नारदीय)

इसीलिये कहा है कि पात्र देखकर ही पुराणोंको सुनाना चाहिये। अपात्रोंको सुनानेसे वे लोग अर्थका अनर्थ करने लगते हैं। जो सुपात्र हो, श्रद्धावान् हो, वही पुराणोंके सुननेका अधिकारी होता है। इसलिये जो दम्भी हो, पापी हो, देवताओं और गुरुओंका निन्दक हो, साधुओंका द्वेषी हो, शठ हो ऐसे लोगोंको पुराणोंका उपदेश नहीं देना चाहिये। जो शान्त-स्वभावके हों, जिनके चित्तमें भगवान् रामकी भक्ति हो, जो सेवा-शुश्रूषामें रत हों, निर्मत्सर हों, पवित्र हों तथा सद्वैष्णव हों, उन्हींको पुराणोंका उपदेश देना चाहिये।[१]

पुराणोंकी कथाएँ रोचक भी हैं, भयानक भी हैं और यथार्थ भी हैं। इनसे सदुपदेश मिलते हैं। पुराणोंकी सत्कथाओंका संग्रह करके प्रकाशित किया जाय तो लोगोंका बड़ा कल्याण हो। वास्तवमें पुराण और महाभारत—ये पञ्चम वेद ही हैं। जिन स्त्री, शूद्र तथा द्विज-बन्धुओंको वेदाध्ययनका अधिकार नहीं है, वे इन पञ्चम वेदसे ही वेदोंका ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं, क्योंकि ये वेदोंके भाष्य ही हैं।

पुराणोंकी प्रामाणिकता, दार्शनिकता और महत्ता

(स्वामी श्रीनिश्चलानन्द सरस्वतीजी महाराज)

पुराणोंकी प्रामाणिकता

'पुराण' शब्दका अर्थ पुरातन या प्राचीन है। मन्त्र-ब्राह्मणात्मक वेद अनादि, अपौरुषेय हैं। श्रीव्यासादिविरचित पुराण अर्थतः अनादि होते हुए भी पौरुषेय हैं। प्रजापति पितामहको सर्वप्रथम पुराणोंका स्मरण हुआ, पुनः वेदोंका। इस प्रकार वेदोंकी अभिव्यक्तिकी अपेक्षा पुराणोंकी अभिव्यक्ति पुरातन होनेके कारण पुराणको 'पुराण' कहा गया है। पौरुषेय-अपौरुषेय भेदसे पुराण दो प्रकारके हैं। पौरुषेय पुराण श्रीवेदव्यासादिविरचित हैं। अपौरुषेय पुराण अष्टविध ब्राह्मणान्तर्गत होनेसे वेदात्मक हैं। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद—ये चार प्रकारके मन्त्र-समुदाय हैं। इतिहास, पुराण, विद्या, उपनिषद्, श्लोक, सूत्र (वस्तुसंग्रहवाक्य), अनुव्याख्यान (मन्त्र-विवरण) और व्याख्यान (अर्थवाद)—ये अष्टविध ब्राह्मण हैं। इनमें **'असद्वा इदमग्र आसीत्'** (तैत्तिरीय २।७।१) आदि जगत्कारणके ख्यापक ब्राह्मणवचन पुराण हैं। 'शतपथब्राह्मण ११।५।१ आदिके उर्वशी-पुरुरवा-संवाद और प्राणादि-संवाद इतिहास-लक्षणात्मक हैं। चारों प्रकारके मन्त्रसमुदायसहित अष्टविध ब्राह्मण परमात्माके बुद्धि-प्रयत्न-निरपेक्ष निःश्वास हैं। बृहदारण्यक (२।४।१०) में इनका वर्णन इस प्रकार प्राप्त होता है—

स यथार्द्रेधाग्नेरभ्याहितात् पृथग्धूमा विनिश्चरन्त्येवं वा अरेऽस्य महतो भूतस्य निश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यानान्यस्यैवैतानि निश्वसितानि।

ऋषिप्रणीत रामायण-महाभारतरूप इतिहास और विष्णु, ब्रह्म आदि अष्टादश पुराण पञ्चम वेद हैं। इनका वर्णन ग्रन्थोंमें इस प्रकारसे उपलब्ध होता है—**'ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमं०.....'** (छान्दोग्य० ७।१।२), **'इतिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदः'** (न्यायदर्शन ४।१।६२ वात्स्यायनभाष्य), **'इतिहास-पुराणं च पञ्चमो वेद उच्यते'** (श्रीमद्भा० १।४।२०)।

उक्त स्थलोंमें निर्दिष्ट इतिहास, पुराण ब्राह्मणप्रभेद नहीं माने जा सकते, क्योंकि पञ्चम वेदके रूपमें और व्याकरणादिके संदर्भमें उनका उल्लेख है—

इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्॥
बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रहरिष्यति।

(महा० आदिपर्व० १।२६७-२६८)

'इतिहास और पुराणोंकी सहायतासे ही वेदोंके अर्थका विस्तार एवं समर्थन करना चाहिये। जो इतिहास और पुराणोंसे अनभिज्ञ हैं, उससे वेद डरते हैं कि यह मुझपर प्रहार कर देगा। **'इतिहासपुराणाख्यमुपाङ्गं च**

१- न दाम्भिकाय पापाय देवगुर्वत्यनुसूयवे। देयं कदापि साधूनां द्वेषिणे न शठाय च॥
शान्ताय शमचित्ताय शुश्रूषाभिरताय च। निर्मत्सराय शुचये देयं सद्वैष्णवाय च॥(नारदीयपुराण)

प्रकीर्तितम्' (सीतोपनिषद्)। 'इतिहास और पुराण उपाङ्ग कहे गये हैं।' इन वचनोंके अनुसार मन्त्र-ब्राह्मणात्मक वेदसे पृथक् इतिहास, पुराणका बोध प्राप्त होता है। **'इतिहास-पुराणानामुन्मेषं निर्मितं च यत्'** (महा० आदि० १।६३), **'जयो नामेतिहासोऽयम्'** (महा० आदि० ६२।२०) **'पुराणपूर्णचन्द्रेण श्रुतिज्योत्स्नाः प्रकाशिताः'** (आदि० १।८६) आदि वचनोंके अनुसार महाभारत जहाँ इतिहास सिद्ध होता है, वहाँ पुराण लक्षणलक्षित होनेसे पुराण भी।

पुराणोंमें लोकवृत्तका प्रतिपादन—न्यायदर्शनके वात्स्यायन-भाष्यमें कहा गया है—वेद, धर्मशास्त्र तथा पुराण—इनके मुख्य विषय भिन्न-भिन्न होते हैं। जिस प्रकार रूपमें चक्षु, रसमें रसना, गन्धमें नासिका, स्पर्शमें त्वक् और शब्दमें श्रोत्रका ही प्रामाण्य है, उसी प्रकार अपने-अपने विषयमें श्रुति-स्मृति और पुराण तीनों ही प्रमाण हैं। केवल एकसे काम नहीं चलता। वेदका मुख्य प्रतिपाद्य विषय यज्ञ है। यज्ञमें देवपूजा, देवसम्बन्धी सङ्गतिकरण और देवविषयक दानादिका संनिवेश है। इतिहास-पुराणोंका मुख्य विषय है लोकवृत्त (चरित्र)-प्रतिपादन। लोकव्यवहारकी व्यवस्था बताना यह धर्मशास्त्रका प्रधान विषय है। लिखा है—

'विषयव्यवस्थानाच्च यथाविषयं प्रामाण्यम्। अन्यो मन्त्रब्राह्मणस्य विषयः, अन्यश्च इतिहासपुराणधर्मशास्त्राणाम् इति, यज्ञो मन्त्रब्राह्मणस्य, लोकवृत्तमितिहासपुराणस्य, लोकव्यवहारव्यवस्थापनं धर्मशास्त्रस्य विषयः, तत्रैकेन न सर्वं व्यवस्थाप्यत इति, यथा विषयं एतानि प्रमाणानि इन्द्रियादिवदिति' (४।१।५२ न्यायदर्शन वात्स्यायन-भाष्य)।

यही कारण है कि धर्मशास्त्रविरुद्ध पौराणिक और ऐतिह्य चरित्र अनुकरणीय नहीं होते। तभी तो कहा है—

अतिरक्ततया नार्यां त्यक्तान्यललनास्पृहः।
सीतायां रामवत्सोऽयमनुकूलः प्रकीर्तितः॥
राधायामेव कृष्णस्य सुप्रसिद्धानुकूलता।
तदालोके कदाप्यस्य नान्यासङ्गः स्मृतिं व्रजेत्॥

(उज्ज्वलनीलमणि, नायकभेद २२-२३)

वर्तितव्यं शमिच्छद्भिर्भक्तवन्न तु कृष्णवत्।
इत्येवं भक्तिशास्त्राणां तात्पर्यस्य विनिर्णयः॥
रामादिवद्वर्तितव्यं न क्वचिद्रावणादिवत्।
इत्येष मुक्तिधर्मादिपराणां नय इष्यते॥

(उज्ज्वलनीलमणि, हरिवल्लभा २३-२४)

'श्रीरामचन्द्रजी जिस प्रकार एकमात्र श्रीसीतादेवीमें अनुरक्त थे, ठीक उसी प्रकार जो अन्य-ललनाविषयक स्पृहाका परित्याग कर एक स्त्रीमें अत्यन्त आसक्त होता है, वह (नायक) अनुकूल माना जाता है। श्रीराधामें श्रीकृष्णकी अनुकूलता प्रसिद्ध है। राधिकाके अवलोकन करनेपर उनका अन्य स्त्रीविषयक सङ्ग स्मृतिपथमें स्फुरित नहीं होता।'

कल्याणेप्सुओंको चाहिये कि वे भगवद्भक्तोंके सदृश आचरण करें, कभी भी श्रीकृष्ण-सदृश आचरण न करें। भक्ति-मुक्तिके पथिकोंको रामादिकी भाँति व्यवहार करना चाहिये, कभी भी रावणादिके समान आचरण नहीं करना चाहिये। भक्तिशास्त्रोंके तात्पर्यका यह निचोड़ है।

समस्त वेदों, पुराणों, स्मृतियों, इतिहासों, तर्कों और आगमोंका परम तात्पर्य जगत्कारण परमात्मतत्त्वके परिमार्गणकी योग्यता प्रदान कर उस स्वप्रकाश-परमात्मतत्त्वमें आत्मबुद्धि उदित करनेमें ही चरितार्थ है। सृष्टिश्रुति और सृष्टिप्रतिपादक वचनोंका तात्पर्य स्रष्टा परमात्माका आत्म और आत्मीयभावसे भजन करनेमें ही चरितार्थ है।

श्रीमद्भागवतादि पुराण भक्ति, ज्ञान, विरागलक्षण, पारमहंस्यधर्म—नैष्कर्म्यके प्रतिपादक हैं। इनमें आदि, मध्य, और अन्तमें वैराग्य उत्पन्न करनेवाली बहुत-सी अमृतस्वरूप कथाएँ हैं। उनसे सत्पुरुषों और सुरोंको सुरदुर्लभ अनुपम आनन्द मिलता है। सर्ववेदान्तसार अद्वितीय ब्रह्मात्मतत्त्व पुराणोंका प्रतिपाद्य विषय है। ये कैवल्यैक-प्रयोजन हैं। जैसे दिव्य अमृत पान करनेपर कुछ भी पान करना शेष नहीं रहता, वैसे ही सर्ववेदान्तसार पुराणोंको जान लेनेपर जिज्ञासुके लिये और कुछ भी जानना शेष नहीं रहता। जो दाम्भिक, नास्तिक, शठ, श्रवणके प्रति अश्रद्धालु, अभक्त और उद्धत न हो प्रत्युत ब्राह्मणभक्त, प्रिय, साधुस्वभाव, पवित्र हो, वह पुराण-श्रवणका अधिकारी है। यदि शूद्र और स्त्री भी भगवान्‌के प्रति भक्तिभावसम्पन्न हों तो वे भी पुराण-श्रवणके अधिकारी हैं।

आदिमध्यावसानेषु वैराग्याख्यानसंयुतम्।
हरिलीलाकथाव्रातामृतानन्दितसत्सुरम्॥

सर्ववेदान्तसारं यद् ब्रह्मात्मैकत्वलक्षणम्।
वस्त्वद्वितीयं तन्निष्ठं कैवल्यैकप्रयोजनम्॥
(श्रीमद्भा० १२।१३।११-१२)

श्रद्धापूर्वक दत्तचित्त होकर नित्य पुराण-श्रवण करनेका फल भगवत्स्वरूपमें परा भक्ति और उसके प्रभावसे कर्म-बन्धनकी निवृत्ति है—

य एतच्छ्रद्धया नित्यमव्यग्रः शृणुयान्नरः।
मयि भक्तिं परां कुर्वन् कर्मभिर्न स बध्यते॥
(श्रीमद्भा० ११।२९।२८)

—(क्रमशः)

पुराणकी महिमा एवं माहात्म्य

(अनन्तश्री स्वामी माधवाश्रमजी महाराज)

'पुराण' शब्द सुनते ही जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि पुराण क्या है? इसका अर्थ क्या है? अनेक ग्रन्थोंमें इसकी व्याख्याएँ की गयी हैं। उन्हींके आश्रयणसे हम यहाँ इसपर विचार कर रहे हैं।

'पुरा अपि नवं पुराणम्' से प्रतीत होता है कि पुराना होनेपर भी जो नवीन हो वह पुराण है। निरुक्तकार व्याख्या करते हैं—**'पुराणमाख्यानं पुराणम्'** अर्थात् जिसमें प्राचीन आख्यान हों, वह पुराण है। वायुपुराण **'यस्मात् पुरा ह्यनतीदं पुराणं तेन तत् स्मृतम्**—(१।१।१८३)के अनुसार— जो पूर्वमें भी सजीव था, वह पुराण कहा गया है। देवीभागवत (१।२।१८)में पुराणोंके पाँच लक्षण इस प्रकार कहे गये हैं—

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्॥

पुराण भी वेदार्थके ही बोधक हैं। पुराणोंमें वेदोंकी व्याख्या विविध कथा-दृष्टान्तोंद्वारा की गयी है। पुराणोंके ज्ञानके बिना वेदोंका भी ज्ञान पूर्णरूपेण नहीं हो सकता। इसके विषयमें नारदपुराणका वचन द्रष्टव्य है—

वेदाः प्रतिष्ठिताः सर्वे पुराणेष्वेव सर्वदा।
(नारदं० उ० २४।१८)

'वेद पुराणोंमें ही प्रतिष्ठित हैं इसमें कोई संशय नहीं है।' वेदकी व्याख्या इतिहास और पुराणोंसे ही की जा सकती है। महाभारतमें कहा गया है—

इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्।

वायुपुराण (१।१।१८०) में भी यह वचन मिलता है—

यो विद्याच्चतुरो वेदान् साङ्गोपनिषदो द्विजः।
न चेत् पुराणं स विद्यात् नैव स स्याद् विचक्षणः॥

'जो द्विज अङ्गोंसहित चारों वेदोंको जानता है, किंतु पुराणोंको नहीं जानता, वह पण्डित कदापि नहीं हो सकता। श्रीमद्भागवतमें भी स्पष्ट कहा गया है—**'इतिहासं पुराणं च पञ्चमो वेद उच्यते।'** इतिहास और पुराणोंको पाँचवाँ वेद कहा गया है।

पुराणोंमें तीर्थ-व्रत-अनुष्ठान

पुराणोंमें काम्यादि अनुष्ठानोंका वर्णन अनेक स्थलोंपर है और प्रत्येक आख्यानके अन्तमें उस आख्यायिकाकी फलश्रुति भी रहती है। प्रायः सभी पुराणोंमें यही शैली प्रशस्त है। यद्यपि पुराणोंका परम तात्पर्य अद्वैत ब्रह्ममें ही है तथापि अवान्तर तात्पर्य अनेक काम्यादि कर्मोंमें भी है। अतएव इसी संदर्भमें तीर्थोंका माहात्म्य एवं तीर्थस्नान, तीर्थमें दान-पुण्य तथा व्रत करनेकी विधि वर्णित है।

पुराणोंमें धर्म-निरूपण एवं निर्णय

पुराणोंमें विविध विद्याओंके साथ वर्णाश्रमधर्मका, विविध संस्कारोंका, व्याकरण, छन्द, ज्योतिष तथा धर्म-शास्त्रादिका वर्णन प्रचुर मात्रामें है। पुराणोंके बिना वेदमें भी गति होनी सम्भव नहीं। यह निश्चय समझ लेना चाहिये कि पुराण भी वेदवत् ही प्रमाण माने जाते हैं।

रामकथा सुंदर कर तारी। संसय बिहग उड़ावनिहारी॥
रामकथा कलि बिटप कुठारी। सादर सुनु गिरिराजकुमारी॥

भारतीय पुराणोंका महत्त्व

(श्री १०८ दण्डी स्वामी श्रीविपिनचन्द्रानन्द सरस्वतीजी 'जज स्वामी')

'पुराण' भारतवर्षकी बहुमूल्य निधि हैं, जिनका महत्त्वपूर्ण परिचय सामवेदीय छान्दोग्योपनिषद्के सप्तम अध्याय (१।२) में इस प्रकार मिलता है—'शोकाकुल नारदजी सनत्कुमारजीके पास गये और उनसे आत्मज्ञानकी जिज्ञासा की। सनत्कुमारजीके यह पूछनेपर कि 'आप पहलेसे क्या-क्या जानते हैं?' नारद मुनिने उत्तर दिया कि 'मैं ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेदके अतिरिक्त पञ्चम वेद इतिहास, पुराणादि तथा अन्य अनेक शास्त्रों, विद्याओंसे परिचित हूँ।' तब सनत्कुमारजीने परोवरीय (उत्तरोत्तर उत्कृष्ट)-क्रमसे शब्द-ब्रह्मका परब्रह्मरूप भूमसंज्ञक आत्मतत्त्वमें ही परम तात्पर्य बताकर, शोकापहारक भूमाविद्या-रूप आत्मज्ञान प्रदान कर देवर्षि नारदको कृतार्थ किया। आधुनिक समयमें भी भारतके प्राचीन इतिहासकी शृङ्खला बिठानेमें पाश्चात्त्य विद्वानोंने पौराणिक सहायता प्राप्त की है। भारतीय साहित्य और धर्मशास्त्रोंमें पुराणोंका अत्यन्त आदरसे स्मरण हुआ है और उन्हें प्रबल प्रमाण भी माना गया है।

वेदव्यासद्वारा विरचित पुराण आख्यायिकाओं, विद्याओं, कथाओं और इतिहासोंके संग्रहरूप ग्रन्थ हैं, जो प्रायः श्लोकबद्ध हैं और वैदिक सिद्धान्तोंकी व्याख्यारूप हैं। इनकी भाषा इतनी सरल है कि सर्वसाधारणजन भी क्लिष्ट दार्शनिक श्रीमद्भागवतपुराणको व्यासजीसे प्राप्त किया। राजा परीक्षित्का कल्याण श्रीमद्भागवत महापुराणके श्रवण और मननसे हुआ। तबसे यह महापुराण सर्वसाधारणके लिये परम कल्याणका साधन बन गया।

सारांश यह है कि हमारे वेदोंमें शाश्वत सत्य परमतत्त्वका सर्वोत्तम प्रामाणिक वर्णन है। मन्वादि स्मृतियोंमें हमारे धर्माचार एवं शिष्टाचारका वर्णन है। कर्तव्याकर्तव्यका ज्ञान मन्वादि धर्मशास्त्रोंके द्वारा होता है। जो सज्जन बुद्धिमान्द्य, प्रमाद, करणापाटव, दुराग्रह, दुरित अथवा विधिवत् शिक्षाके अभाव आदि प्रतिबन्धों—दोषोंके कारण श्रुति-स्मृतियोंके रहस्योंसे अपने कल्याणका मार्ग प्रशस्त नहीं कर पाते, उन्हें सुगमता-पूर्वक श्रुति-स्मृतियोंके अभिप्रायको सरलतासे हृदयङ्गम करानेके लिये पुराणोंका निर्माण हुआ है, जिनके श्रवणसे प्रतिबन्ध कट जाते हैं और कल्याणकामी सज्जन शीघ्र और सुगमतापूर्वक श्रेयोमार्गपर आरूढ़ हो जाते हैं। पुराणोंके नित्य श्रवण और मननसे शिष्टाचार और सभ्यताकी उत्तम शिक्षा प्राप्त होती है, जिससे मनुष्य इस जगत्में पाप करनेमें निपुण हो जाता है और परलोकमें सद्गति प्राप्त करता है। इनके अतिरिक्त मन्त्र, तन्त्र, यन्त्र, ज्योतिष-विद्या, युद्ध-विद्या आदि भी पुराणोंके माध्यमसे सीख सकते हैं।

अब हम कुछ पौराणिक कथाओंकी सम्यक् विशेषता बतलाकर इस लेखको समाप्त करते हैं। जैसे वेदकी आज्ञा है—'**सत्यं वद, धर्मं चर**' (तैत्तिरीय १।११।१), इसका पूरा-पूरा पालन राजा हरिश्चन्द्र, भगवान् राम और बलिके द्वारा पुराणोंमें दर्शाया गया है। '**अतिथिदेवो भव**' (तैत्तिरीय १।११।२) के उदाहरण राजा शिवि और रन्तिदेव माने गये हैं। ब्रह्मचर्य-पालन करनेकी वैदिकी आज्ञाका अनुपम उदाहरण कपिल, भीष्म, हनुमान्, शंकराचार्य एवं अर्जुन आदि हैं। इन प्रसिद्ध कथाओंका विस्तृत वर्णन यहाँ करना उपयुक्त नहीं होगा।

अब पौराणिक राजाओंकी न्यायनिष्ठाके सम्बन्धमें एक विलक्षण कथाका वर्णन किया जाता है—केशिनी नामकी एक सुन्दर राजकुमारीको राजा प्रह्लादके पुत्र विरोचन और बृहस्पतिके पुत्र सुधन्वा—दोनों वरण करना चाहते थे। केशिनीने कहा—'तुम दोनोंमें जो श्रेष्ठ होगा, उसीसे मैं विवाह करूँगी ?' दोनों लड़कोंने श्रेष्ठ होनेका दावा किया। गुरुपुत्रने ब्राह्मण होनेके कारण अपनेको श्रेष्ठ सिद्ध करना चाहा तथा विरोचनने राजपुत्र क्षत्रिय होनेके हेतु अपनेको श्रेष्ठ सिद्ध करना चाहा और शर्त यह ठहरायी गयी कि जो श्रेष्ठ सिद्ध होगा, उसके साथ कन्या केशिनीका विवाह होगा और वह असफल लड़केका प्राण ले लेगा। निर्णयके लिये प्रह्लादके पास दोनोंने जाकर अपना अभिप्राय सुनाया तथा प्राणोंकी बाजीकी शर्त भी बता दी। प्रह्लादके सामने आश्चर्यजनक समस्या उपस्थित हो गयी—एक ओर प्रिय पुत्र विरोचनके प्राणहरणकी सम्भावना तो दूसरी ओर उचित निर्णय देकर न्यायरक्षा कर कर्तव्य-निर्वाहका दायित्व। विचार कर प्रह्लादने निर्णय दिया कि 'मुझसे अङ्गिरा ऋषि श्रेष्ठ हैं और तुमसे सुधन्वा श्रेष्ठ है।' ऐसा निर्णय देकर प्रह्लादने अपने पुत्रको ब्राह्मणको अर्पित कर कहा—'ऋषिकुमार ! इसका जीवन अब आपकी इच्छाके अधीन है।' यह सुनकर ऋषिकुमारने कहा कि 'ऐसे निष्पक्ष न्यायकारी राजाके पुत्रका विनाश कैसे हो सकता है ? इसे हमने क्षमा किया।' न्यायकर्ता प्रह्लादके पुत्रकी रक्षा हुई। पुराणोंमें ऐसे और कई आख्यान हैं। पर क्या इस प्रकारका न्याय कोई कर सकता है ? अपने और सम्बन्धियोंके लिये आज न्यायकी हत्या की जाती है। छल-कपटका आश्रय लेकर हितकर कानूनको भी बदलनेकी दुष्प्रवृत्ति देखी जाती है। ऐसी परिस्थितिमें पुराणोंके पठन-पाठन, मनन और आदर्श चरित्रों-का प्रचार एवं प्रसार परमावश्यक है। यदि पुराण न हों तो भारतीय सभ्यता एवं महत्ताका प्रमाण क्या रहेगा ? तथा बिना सभ्यता एवं संस्कृतिके देशका क्या अस्तित्व होगा ? यही भारतीय पुराणोंकी महत्ताका रहस्य है।

सिद्धोंकी पौराणिक प्रासंगिकता

(गोरक्षपीठाधीश्वर महन्त श्रीअवेद्यनाथजी महाराज)

तपःपुञ्ज परम कारुणिक महर्षि व्यासरचित अठारह पुराण तथा उपपुराणादि समग्र सार्वभौम आध्यात्मिक, सांस्कृतिक, धार्मिक तथा सामाजिक आदि जीवन-दर्शनके जीवन्त भाष्य अथवा विश्वकोष हैं। पुराणोंमें भारतीय सांस्कृतिक सम्पत्ति सुरक्षित है। योगदर्शन ही नहीं, विशेष परिप्रेक्ष्यमें महायोगी शिवगोरक्ष—गोरक्षनाथजीद्वारा संरक्षित शिवोपदिष्ट नाथयोगामृत और अनेक नाथसिद्धयोगियोंके साधनामय जीवनके यत्र-तत्र सहज यथावश्यक संदर्भसे यह स्पष्ट हो जाता है कि हमारी रहनी-करनीमें कितने व्यापकरूपमें पौराणिक प्रासंगिकताएँ भरी पड़ी हैं। स्कन्दपुराणके काशीखण्ड, नारदपुराण, मार्कण्डेयपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, वायुपुराण, पद्मपुराण, श्रीमद्भागवतपुराण, ब्रह्माण्डपुराण आदिमें सिद्धयोगियों और उनकी साधना-पद्धति तथा योगकी सामान्य उपादेयताओंका निरूपण इस तथ्यका संकेत है कि उनमें योग और सिद्धोंके सम्बन्धमें कितना उदार दृष्टिकोण परिलक्षित है।

गोरक्षसिद्धान्तसंग्रहमें ब्रह्माण्डपुराणके ललिताखण्डमें ललितापुरवर्णनमें योगमहाज्ञान-चिन्तनमें तत्पर महायोगी गोरक्षनाथ और अनेक सिद्धसमूह, दिव्य ऋषिगण तथा प्राणायामपरायण योगियोंके प्रसंग मिलते हैं।

ललितापुरके उत्तरकोणमें अत्यन्त [illegible] वायुलोक है। उस लोकमें वायुशरीरधारी, म[illegible]द्धसमूह,

दिव्य ऋषिगण, प्राणायामके अभ्यासी दूसरे योगी तथा योगपरायण, योगमहाज्ञानचिन्तनमें तत्पर श्रीगोरक्षनाथजी आदि अनेकानेक योगियोंके समुदाय निवास करते हैं।

श्रीमद्भागवतपुराणमें, वातरशना मुनियोंके संदर्भमें, नाथसिद्धोंके सम्बन्धमें यथेष्ट प्रकाश पड़ता है। वातरशनाकी यह परम्परा ऋग्वेद (१०।१३६) में परिलक्षित है जो प्राणायामादि यौगिक क्रियाओंमें प्रवृत्त कायादण्डन तथा निवृत्तिप्रधान जीवन-यापनमें विश्वासी और आस्थावान् चित्रित किये गये हैं। श्रीमद्भागवतमें कहा गया है—

कविर्हरिरन्तरिक्षः प्रबुद्धः पिप्पलायनः।
आविर्होत्रोऽथ द्रुमिलश्चमसः करभाजनः॥

(५।४।११)

श्रीमद्भागवतमें वर्णित नवयोगेश्वरोंकी, नवनाथोंकी मान्यतामें शिवगोरक्ष महायोगीकी गणना नहीं की गयी है। उन्हें तो साक्षात् शिवका अवतार शिवस्वरूप कहा गया है।

आदिनाथ भगवान् महेश्वरने क्षीरसागरमें मणि-प्रदीप्त सप्तशृंग पर्वतपर भगवती उमाके प्रति महायोगज्ञानका वर्णन आरम्भ किया। भगवतीके निद्राभिभूत होनेपर मत्स्यके उदरसे निकलकर मत्स्येन्द्रनाथजीने यह योगोपदेश सुना। उन्होंने महेश्वरको देवीसहित नमस्कारकर समस्त वृत्तान्तका वर्णन किया।

तं कल्पयामास सुतं शुभाङ्गे
सोत्सङ्ग आस्थाप्य चुचुम्ब वक्त्रम्।
सुतो ममायं किल मत्स्यनाथो
विज्ञाततत्त्वोऽखिलसिद्धनाथः॥

(नारदपुराण उत्तर० ६९।२३)

संतयोगी ज्ञानेश्वरने नारदपुराणके इसी प्रासंगिक उद्धरणके अनुरूप श्रीमद्भगवद्गीताकी टीका ज्ञानेश्वरीके १८वें अध्यायमें वर्णन किया है कि क्षीरसमुद्रके तटपर श्रीशंकरने न जाने कब एक बार शक्ति-पार्वतीके कानमें जो उपदेश दिया था, वह क्षीरसमुद्रकी लहरोंमें किसी मत्स्यके पेटमें गुप्त मत्स्येन्द्रनाथके हाथ लगा—अचलसमाधिका उपभोग लेनेकी इच्छासे मत्स्येन्द्रनाथने गोरखनाथको उपदेश दिया।

क्षीरसिंधु परिसरीं। शक्तिच्या कर्णकुहरीं।
नैणाके श्रीत्रिपुरारी। सांगितलेजे ।
ते क्षीरकल्लोला आंतु। मकरोदरीं गुप्तु।
होता तया चा हातु। पैहो जालें।
.....
मग समाधि अव्यत्ययां। भोगावीं वासना यया।
ते मुद्रा श्रीगोरक्षराया। दिधलीं मीनीं॥

(ज्ञानेश्वरी, अध्याय १८)

अवधूत दत्तात्रेयकी तपस्या, योग-साधना और जीवन-वृत्तान्तका पर्याप्त वर्णन मार्कण्डेयपुराणके अनेक अध्यायोंमें प्राप्त होता है। श्रीमद्भागवतके एकादश स्कन्धमें दत्तात्रेयका वर्णन उनकी योग-साधनाका परिचायक है। वे श्रीमद्भागवतमें दिष्टभुक्-रूपमें वर्णित हैं। उनका कथन है कि दिन-रातमें जो कुछ मिल जाता है, उसे मैं ग्रहण करता हूँ तथा दिष्ट-जैसा भोग करता हूँ, उससे संतुष्ट रहता हूँ।

वसेऽन्यदपि सम्प्राप्तं दिष्टभुक् तुष्टधीरहम्॥

(७।१३।३९)

मार्कण्डेयपुराणके १७से १९वें अध्यायमें दत्तात्रेयके सम्बन्धमें कहा गया है कि वे सती अनसूया और महर्षि अत्रिके पुत्रके रूपमें प्रकट हुए थे। उन्होंने कावेरी नदीके तटपर तथा सह्याद्रिक्षेत्रमें तपस्या की थी। मार्कण्डेयपुराणके ३९वेंसे ४१वें अध्यायमें वर्णन है कि उन्होंने मदालसाके पुत्र अलर्कको योगोपदेशामृत प्रदान किया था। उनका कथन है—

समाहितो ब्रह्मपरोऽप्रमादी
शुचिस्तथैकान्तरतिर्यतेन्द्रियः।
समाप्नुयाद् योगमिमं महात्मा
विमुक्तिमाप्नोति ततः स्वयोगतः॥

मार्कण्डेय और श्रीमद्भागवतपुराणकी प्रासंगिकताके परिप्रेक्ष्यमें सिद्ध अवधूत-रूपमें वर्णित नाथसिद्ध दत्तात्रेयने शिवयोगी गोरखनाथको प्रणाम किया है।

निःसंदेह पौराणिक आख्यानों और प्रासंगिकताओंमें यथेष्ट रूपसे उदारता और सर्वमङ्गलमयताका स्वर अक्षर-अक्षरमें अनुप्राणित है।

पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्

(पं० श्रीलालबिहारीजी मिश्र)

निम्नलिखित श्लोक अनेक पुराणोंमें प्राप्त होता है—

पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्।
अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः॥

यह श्लोक बहुत महत्त्वपूर्ण है; क्योंकि इससे शास्त्रोंका स्वरूप और इनके आविर्भावके क्रमका ठीक-ठीक ज्ञान हो जाता है। इस श्लोकसे परिचित न होनेके कारण ही आज वेद और पुराणके स्वरूप और कालके सम्बन्धमें अनेक भ्रमपूर्ण मत प्रचलित हो गये हैं। अतः इस श्लोकके अर्थसे परिचित होना अपेक्षित हो गया है।

'कृत', 'स्मृत' और 'विनिर्गत' (श्रुत) ग्रन्थ

उपर्युक्त वचनमें पुराणके लिये 'स्मृत' और वेदके लिये 'विनिर्गत' शब्दका प्रयोग किया गया है। दोनों ग्रन्थोंमेंसे किसीके लिये भी 'कृत' शब्दका प्रयोग नहीं है। इन अनुगुण शब्दोंका प्रयोग जान-बूझकर किया गया है। अतः जिज्ञासा होती है कि वेदके लिये 'विनिर्गत' शब्दका ही प्रयोग क्यों होता है, 'कृत' और 'स्मृत' शब्दका प्रयोग क्यों नहीं होता? इसी तरह पुराण आदि शास्त्रोंके लिये 'स्मृत' शब्दका ही प्रयोग क्यों होता है, 'विनिर्गत' या 'कृत' शब्दका प्रयोग क्यों नहीं होता?

इसका समाधान तभी सम्भव है, जब हम 'कृत', 'स्मृत' और 'विनिर्गत' शब्दोंके अर्थोंको ठीक-ठीक जान जायँ। संस्कृत-वाङ्मयमें ही 'स्मृत' और 'विनिर्गत' ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं, अन्य वाङ्मयोंमें नहीं। अतः अन्य भाषाविदोंके लिये इनकी जानकारी विशेषरूपसे अपेक्षित है।

(क) 'कृत' ग्रन्थ

'कृत' ग्रन्थ वह होता है, जिसके अर्थ और शब्द किसी पुरुषके द्वारा निर्मित होते हैं, जैसे—मालती-माधव, रघुवंश आदि। 'मालती-माधव' भवभूतिकी रचना है। इसके संवाद, सामाजिक चित्रण आदि सभी अर्थ कविकी कल्पनासे प्रसूत हैं। समूची कथावस्तु ही कल्पित है। इसी तरह 'मालती-माधव'के अर्थ और शब्द किसी पुरुषद्वारा कल्पित हैं। इसलिये इस ग्रन्थको हम 'कृत' कहते हैं। रघुवंशकी कथावस्तु यद्यपि रामायणसे और पुराणोंसे ली गयी है, फिर भी इसे जो कल्पित माना जाता है, इसका कारण यह है कि कविलोग सरस बनानेके लिये उसके अर्थ और भावोंको अपनी कल्पनासे गढ़ लेते हैं। ध्वन्यालोक आदि आकर-ग्रन्थोंने इन्हें ऐसा करनेके लिये आदेश भी दे रखा है। दूसरी बात यह है कि कालिदासने अपने काव्य-रचना-प्रसङ्गको रामायण सुन-पढ़कर ही जाना है, ऋतम्भरा प्रज्ञासे उसका स्मरण नहीं किया है। अतः रघुवंश वाल्मीकि-रामायणकी तरह 'स्मृत' ग्रन्थकी कोटिमें नहीं आता। इस तरह कवियों एवं विद्वानोंकी कृतियाँ 'कृत' ग्रन्थकी कोटिमें आती हैं।

(ख) 'स्मृत' ग्रन्थ

शास्त्र दो दलोंमें विभक्त हैं। एक दलका नाम है—'श्रुति' (वेद) और दूसरे दलका नाम है 'स्मृति'। वेदोंको छोड़कर पुराण, उपपुराण, धर्मशास्त्र आदि सब शास्त्र 'स्मृत' (स्मरणके द्वारा प्राप्त) होनेके कारण 'स्मृति' कहलाते हैं। यह पङ्कजकी तरह योगरूढ़ शब्द है। पङ्कज कमलका पर्यायवाची शब्द है। कीचड़से उत्पन्न (पङ्कात्जात इति पङ्कजः) होनेके कारण इसमें यह व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ घटित होता है। अतः 'योग' है। फिर जोंक आदि अर्थको व्यावृत करनेके लिये कमल-अर्थमें रूढ़ भी माना जाता है। इस तरह 'स्मृत' ग्रन्थ वह कहलाता है, जिसके नित्य-नूतन अर्थको तपःपूत ऋतम्भरा प्रज्ञाके द्वारा स्मरण किया जाता है और बादमें उसे अपने शब्दोंमें बाँध लिया जाता है। पुराण इस तरहसे 'स्मृत' ग्रन्थ है। इसका अर्थ नित्य-नूतन है। इसके शब्द कल ब्रह्माके थे और आज व्यासके हैं, किंतु पुराणका अर्थ न तो ब्रह्माकी बुद्धिकी उपज है और न व्यासकी ही।

'कृत' ग्रन्थ भी परिस्थिति-विशेषमें 'स्मृत' हो सकते हैं। मान लीजिये, बीस वर्ष पहले हमने मालती-माधवको खूब समझकर पढ़ा था। बादमें परिस्थितिवश उसकी चर्चा भी छूट गयी। आज हम उसे याद करना चाह रहे हैं। ऐसी परिस्थितिमें पहले तो उसका धुँधला अर्थ स्मृति-पटलपर उभरने लगता है। कहीं स्मरणशक्तिने ठीक-ठीक साथ दिया, तब उसका पूरा-का-पूरा अर्थ याद हो आता है। शब्दोंकी आनुपूर्वी पहले भी याद न थी,

अतः उसका स्मरण न हो पायेगा। यदि इस स्मृत (याद किये हुए) अर्थको हम अपने शब्दोंमें बाँध लेते हैं तो 'मालती-माधव' नामका ग्रन्थ तैयार हो गया। यह ग्रन्थ हमसे 'स्मृत' कहा जायगा, न कि 'कृत'; क्योंकि इस ग्रन्थके अर्थको हमने नहीं बनाया है, इसके बनानेवाले तो भवभूति हैं। हमने तो इसे स्मरणमात्र किया है। हाँ, इस अर्थको हमने अपने शब्दोंमें बाँधा है। इसलिये इस अंशमें हमारा कृतित्व अवश्य है, किंतु इतनेसे हम मालती-माधवके 'कर्ता' नहीं हो सकते, केवल 'अनुवादक' हो सकते हैं। यह हुआ 'कृत' मालती-माधव और 'स्मृत' मालती-माधवका भेद।

'स्मृत मालती-माधव'में जैसे स्मर्ताका कर्तृत्व नहीं होता, वैसे ब्रह्मा या व्यासद्वारा 'स्मृत' पुराण आदि शास्त्रोंमें भी इनका कर्तृत्व सम्भव नहीं है। ये केवल 'स्मर्ता' कहे जाते हैं।

(ग) 'विनिर्गत' ग्रन्थ

'विनिर्गत' ग्रन्थ वह होता है, जिसका अर्थ, शब्द और उच्चारण किसी पुरुषके द्वारा कृत नहीं होता। संस्कृत-वाङ्मयमें ऐसे ग्रन्थको 'श्रुति' कहा जाता है। यह भी योगरूढ शब्द है। **'श्रूयत एव, न केनचित् क्रियत इति श्रुतिः।'** अर्थात् जो वाक्यसमूह सुना ही जाता है, किसी पुरुषके द्वारा किया नहीं जाता, उसे 'श्रुति' कहते हैं। यह योग (व्युत्पत्ति) है और यह 'श्रुति' शब्द वेद-रूप ग्रन्थमें रूढ भी है।

उदाहरणके लिये 'रेडियोसे विनिर्गत मालती-माधव'को रखा जा सकता है। मान लीजिये, हम 'मालती-माधव'को रेडियोसे सुन रहे हैं और लिपिबद्ध भी करते जा रहे हैं। पुस्तक तैयार हो गयी। प्रश्न है कि इस पुस्तकके कर्ता हम कहे जा सकते हैं क्या? उत्तर है—नहीं; क्योंकि हमने न तो इस ग्रन्थके शब्दका निर्माण किया है, न अर्थकी कल्पना की है और न उच्चारण ही बनाया है। ये सब-के-सब रेडियोसे विनिर्गत (निकले हुए) हैं। हमने तो इन्हें सुनकर लिखा भर है। इस तरह इस रेडियोसे विनिर्गत 'मालती-माधव'के हम न तो 'कर्ता' हो सकते हैं, न 'स्मर्ता' तथा न 'अनुवादक' ही केवल 'लिपिक' हो सकते हैं।

ठीक इसी तरह ब्रह्मा या अन्य ऋषि श्रुतिके वाक्योंके न कर्ता हो सकते हैं न स्मर्ता और न अनुवादक ही।

'कृत' ग्रन्थ अनित्य होते हैं, किंतु ब्रह्माद्वारा 'स्मृत' अर्थ और 'विनिर्गत' वाक्य नित्य-नूतन होते हैं। इसी बातको व्यक्त करनेके लिये उपर्युक्त वचनमें पुराणके लिये **'स्मृतम्'** और वेदके लिये **'विनिर्गताः'** पद दिये गये हैं।

शङ्का—यहाँ प्रश्न उठ सकता है कि ऊपर उद्धृत पुराण वचनमें जो **'स्मृतम्'** और **'विनिर्गताः'** पद आये हैं, इनसे पुराण और वेदकी नित्यता नहीं प्रमाणित की जा सकती; क्योंकि इन दोनों पदोंका प्रयोग अनित्य ग्रन्थोंमें भी होता है। जैसा कि अभी-अभी 'स्मृत मालती-माधव' और 'विनिर्गत मालती-माधव'में इनका प्रयोग दिखलाया जा चुका है। इस तरह जब दोनों पद व्यभिचरित हैं, तब इनके प्रयोगसे यह कैसे समझा जा सकता है कि ब्रह्माने 'अर्थतः' नित्य-पुराणको स्मरण किया और उनके मुखोंसे 'शब्दतः', 'अर्थतः' और 'उच्चारणतः' नित्य-वेद उच्चरित हुए? रह गयी बात इन दोनों पदोंके योगरूढ होनेकी, तो यह भी ठीक नहीं है; क्योंकि इनके योगरूढ होनेमें कोई एकतर पक्षपातिनी युक्ति नहीं है। फिर क्यों न इन्हें 'पाचक'की तरह यौगिक ही मान लिया जाय?

समाधान—इस प्रश्नका उत्थान उद्धृत वचनके प्रसङ्गपर दृष्टि न डालनेसे होता है। देखना होगा कि 'ब्रह्माने किस काल और किस परिस्थितिमें पुराणको स्मरण किया। फिर वह कौन-सी परिस्थिति आयी कि वेद उनके मुखोंसे अपने-आप निकलते चले गये।'

इतिहाससे पता चलता है कि यह घटना उस समयकी है, जब भौतिक सृष्टिका आरम्भ भी न हुआ था। महाप्रलयमें ब्रह्माको छोड़कर और कुछ न था। जैसे शान्त सागरमें तरंग, फेन, बुदबुदका अस्तित्व नहीं रहता, वैसे ही जीव आदिका महाप्रलयमें पृथक् अस्तित्व नहीं हुआ करता। ब्रह्मने सृष्टिकी इच्छा की और भूत सृष्टिके बाद पहला प्राणी ब्रह्माको उत्पन्न किया। तुरंत उत्पन्न शिशुकी बुद्धि जैसे अत्यन्त अविकसित रहती है, वैसे नवजात ब्रह्माजीकी बुद्धि अविकसित थी। वे स्वयं समझ नहीं पाते थे कि वे कौन हैं, क्यों हैं और किसने इन्हें उत्पन्न किया है? इनकी उत्सुकता देखकर भगवान्‌ने आकाशवाणीके द्वारा इनसे तपस्या करायी। तपस्याके बलपर उनकी दो जिज्ञासाओंका समाधान हो गया। तपोबलसे उन्होंने प्रत्यक्ष देखा कि वे भगवान् विष्णुके नाभिकमलसे उत्पन्न हैं। भगवान्‌ने उनकी शेष जिज्ञासाके

समाधानमें कहा कि 'तुम सृष्टिका निर्माण करो।' ब्रह्माजीको अब यह समझमें नहीं आ रहा था कि सृष्टि क्या होती है और उसका निर्माण कैसे होता है? ब्रह्माजीने अपनी जिज्ञासा भगवान्‌के सामने रखी। भगवान्‌ने कहा—'तुम फिर तपस्या करो। इसीसे तुम जान सकोगे कि सृष्टि क्या है और उसका निर्माण कैसे होता है?' ब्रह्मा फिर तप करने लगे। तपस्या जब सीमापर पहुँचने लगी, तब उसके प्रभावसे उन्हें पुराण याद आने लगा। यही बात **'पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्'**—इस पंक्तिसे कही गयी है।

अभी तपस्यामें उस पूर्णताकी अपेक्षा थी, जिसके द्वारा उनका हृदय रेडियो बन जाय, जिससे वह ईश्वरके द्वारा प्रेषित वेदोंको प्रतिफलित कर उनके कण्ठोंसे विनिर्गत कर सके। जब तपस्या पूर्ण हुई, तब कहीं भगवान्‌के भेजे हुए वेद उनके हृदयमें प्रतिफलित हुए और कण्ठोंसे उच्चरित होने लगे—

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं
यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै।

(श्वेत० उ० ६। १८)

अर्थात् ब्रह्म पहले ब्रह्माको उत्पन्न करता है, फिर तपस्या पूर्ण होनेपर उनके पास वेदोंको भेजता है। **'प्रहिणोति'** शब्दसे यह स्वारसिक अर्थ निकलता है कि जैसे रेडियो-स्टेशन शब्दोंको भेजता है और रेडियो उसका प्रतिफलन करता है, वैसे ईश्वरके भेजे हुए वैदिक शब्द ब्रह्माके हृदयमें प्रतिफलित होकर कण्ठोंसे निकलने लगे।

विनिर्गमन—हाँ, तो रेडियोसे जिस तरह 'विनिर्गत मालती-माधव'का उच्चारण करनेवाला उसका कर्ता नहीं हो जाता, उसी तरह वेदके शब्दोंका, उनमें अनुविद्ध अर्थोंका और उदात्त आदि स्वरोंका कर्ता ब्रह्मा नहीं हो सकते। इस तरह इतिहाससे पता चलता है कि ब्रह्माने जिस पुराणका स्मरण किया, वह किसी मनुष्य-कृत मालती-माधवकी तरह 'कृत' ग्रन्थ नहीं था। वह तो अर्थरूप ब्रह्म ही था। इसी तरह उनके कण्ठोंसे जो वेद निकले उनका भी प्रेषण करनेवाला ब्रह्म ही था और वह प्रेषित शब्द भी ब्रह्म ही था।

दृष्टान्त और दार्ष्टान्तका विवेचन

इस तरह जो अनित्य अर्थ है, वह स्मृत और विनिर्गत होकर अनित्य रहता है, यह सही है, किंतु जो 'नित्य अर्थ' और 'नित्य शब्द' हैं, वे स्मृत और विनिर्गत होकर भी नित्य ही रहते हैं। जैसे ब्रह्म नित्य है। अतः वह अरबों लोगोंसे स्मृत होकर भी सदा नित्य ही रहता है, वैसे वेद और पुराणादि शास्त्र नित्य हैं। अतः ये 'विनिर्गत' और 'स्मृत' होकर भी नित्य ही रहते हैं।

नित्यतामें प्रमाण

स्थूणा-निखनन-न्यायसे वेद और पुराणकी नित्यताके प्रतिपादक कुछ वचन दिये जा रहे हैं—

(क) वेद—ब्रह्मरूप

वस्तुतः वेद और पुराण ब्रह्मके स्वरूप हैं। स्वयं वेदने अपनेको ब्रह्मस्वरूप बतलाया है—

ब्रह्म स्वयम्भू। (तै० आ०)

पुराणने इसी बातको दुहराया है—

वेदः नारायणः स्वयम्। (बृ० ना० पु० ४। १७)

ब्रह्मका स्वरूप सद्-रूप, चिद्-रूप और आनन्दरूप होता है—

विज्ञानमानन्दं ब्रह्म। (बृहदा० ३। ९। २८)

'चित्'का अर्थ होता है ज्ञान। इस तरह ब्रह्म जैसे नित्य सत्-स्वरूप, नित्य आनन्द-रूप है, वैसे ही नित्य ज्ञान-रूप भी है। ज्ञानमें शब्दके अनुवेधका होना आवश्यक रहता है—

अनुविद्धमिव ज्ञानं सर्वं शब्देन भाषते। (वाक्यपदीय)

नित्य-ज्ञानके लिये नित्य-शब्दका ही अनुवेध होना चाहिये। इस तरह नित्य-शब्द, नित्य-अर्थ, नित्य-सम्बन्धवाले वेद ब्रह्मरूप सिद्ध हो जाते हैं।

(ख) पुराण—ब्रह्मरूप

वेदने पुराणको अपने समान नित्य माना है। यह समता निम्नलिखित मन्त्रसे व्यक्त होती है—

ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह।

(अथर्व० ११। ७। २४)

स्वयं पुराणने अपनेको ब्रह्म-स्वरूप माना है। पुराण वस्तुतः एक ही है। इसके अठारह प्रकरण ही अठारह पुराण कहे जाते हैं। ये अठारहों प्रकरण अठारह अवयवके रूपमें हैं। अवयवीसे अवयव भिन्न नहीं होता। पद्मपुराणने ब्रह्मको पुराणरूप बतलाते हुए कहा है कि ब्रह्म अनेक रूपोंमें अवतरित होता है। उसका एक रूप पुराण भी है—

एकं पुराणं रूपं वै। (प० पु०, स्व० खं० ६२। २)

यह भी बताया है कि कौन पुराण ब्रह्मका कौन-सा अवयव है,— जैसे १-ब्रह्मपुराण—भगवान्‌का मस्तक, २-पद्मपुराण—हृदय, ३-विष्णुपुराण—दाहिनी भुजा, ४-शिवपुराण—बायीं भुजा, ५-भागवतपुराण—ऊरु-युगल, ६-नारदीयपुराण—नाभि, ७-मार्कण्डेयपुराण—दाहिना चरण, ८-अग्निपुराण—बायाँ चरण, ९-भविष्यपुराण—दाहिना घुटना, १०-ब्रह्मवैवर्तपुराण—बायाँ घुटना, ११-लिङ्गपुराण—दाहिनी घुट्ठी, १२-वराहपुराण—बाँयी घुट्ठी, १३-स्कन्दपुराण—रोएँ, १४-वामनपुराण—त्वचा, १५-कूर्मपुराण—पीठ, १६-मत्स्यपुराण—मेदा, १७-गरुड-पुराण—मज्जा और १८-ब्रह्माण्डपुराण—अस्थि।

एकं पुराणं रूपं वै तत्र पाद्मं परं महत्।
ब्राह्मं मूर्धा हरेरेव हृदयं पद्मसंज्ञितम्॥
वैष्णवं दक्षिणो बाहुः शैवं वामो महेशितुः।
ऊरू भागवतं प्रोक्तं नाभिः स्यान्नारदीयकम्॥
मार्कण्डेयं च दक्षाङ्घ्रिर्वामो ह्याग्नेयमुच्यते।
भविष्यं दक्षिणो जानुर्विष्णोरेव महात्मनः॥
ब्रह्मवैवर्तसंज्ञं तु वामजानुरुदाहृतः।
लैङ्गं तु गुल्फकं दक्षं वाराहं वामगुल्फकम्॥
स्कान्दं पुराणं लोमानि त्वगस्य वामनं स्मृतम्।
कौर्मं पृष्ठं समाख्यातं मात्स्यं मेदः प्रकीर्त्यते॥
मज्जा तु गारुडं प्रोक्तं ब्रह्माण्डमस्थि गीयते।
एवमेवाभवद्विष्णुः पुराणावयवो हरिः॥

(पद्मपुराण, स्वर्गखण्ड ६२। २—७)

इस तरह वेद और पुराण जब ब्रह्मरूप हैं, तब इन्हें अनित्य कहना स्वतः बाधित है। महाप्रलयमें जब ब्रह्मका सदंश और आनन्दांश विद्यमान रहते हैं, तब उसके चिदंशको भी विद्यमान रहना ही चाहिये। उनका वही चिदंश वेद और पुराण हैं। महाप्रलयके बाद भौतिक सृष्टिके निर्माणके लिये ब्रह्म ब्रह्माको प्रकट करता है और जैसे-जैसे ब्रह्माकी बुद्धिका विकास होता जाता है तथा तपस्याका सहयोग मिलता जाता है,वैसे-वैसे पहले ब्रह्मरूप पुराणका स्मरण होता है और पीछे वेदका प्राकट्य होता है।

वेदोंसे सृष्टि

जबतक ब्रह्माके पास वेद नहीं पहुँचे थे, तबतक वे सृष्टि और इसके निर्माणके विषयसे अनभिज्ञ थे। पुराण और वेदोंकी प्राप्तिके बाद उनकी सारी दुविधाएँ मिट गयीं। पश्चात् इन्हींकी सहायतासे वे भौतिक सृष्टिकी रचनामें समर्थ हुए। मनुने लिखा है—

वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक्संस्थाश्च निर्ममे।

(मनु० १। २१)

ब्रह्माद्वारा सम्प्रदायका प्रवर्तन

सृष्टि-क्रमका विस्तार होनेपर ब्रह्माजीने सनक-सनन्दन, वसिष्ठ आदि मानसपुत्रोंको उत्पन्न किया। ब्रह्माने इन्हें पुराण और वेदोंको पढ़ाया। इसके बाद वसिष्ठ आदिने अपने शिष्योंको पढ़ाया। इस तरह शास्त्रोंके पठन-पाठनकी परम्परा चल पड़ी, जो आज भी चलती आ रही है—

वेदपुराणाध्ययनं गुर्वध्ययनपूर्वकम्, अधुनाध्ययनवत्।

व्यासद्वारा संक्षिप्त संस्करण

द्वापरके अन्तमें पुराणकी अध्ययन-परम्परामें विशृङ्खलता आ गयी थी। इसका एक कारण यह भी था कि ब्रह्माका स्मरण किया हुआ पुराण बहुत विशाल था। उसमें सौ करोड़ श्लोक थे—

तपश्चचार प्रथममराणां पितामहः।

× × ×

पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्।
नित्यं शब्दमयं पुण्यं शतकोटिप्रविस्तरम्॥

(मत्स्यपुराण ३। २-३)

इन सौ करोड़ श्लोकोंका पढ़ पाना तब कठिन हो रहा था; क्योंकि आयु और बुद्धिका अधिक ह्रास हो चुका था। आज कलियुगमें ब्रह्मा-स्मृत उस विशालकाय पुराणका पढ़ पाना तो और असम्भव ही है। अतः भगवान्‌की ज्ञानशक्तिके अवतार वेदव्यासने चार लाख श्लोकोंमें इस ब्रह्माद्वारा स्मृत पुराणका संक्षेप कर दिया। आज जो पुराण हमारे पास हैं, इसके शब्द व्यासजीके बनाये हुए हैं। अबतक ब्रह्मा-स्मृत पुराणका कोई संस्करण उपलब्ध नहीं हुआ है।

'स्मृत वाक्य'से 'विनिर्गत वाक्य' प्रबल है

यहाँ यह भ्रम नहीं होना चाहिये कि 'ब्रह्माको सर्वप्रथम पुराण स्मृत हुआ, इसलिये यह परवर्ती वेदसे बढ़कर है।' क्योंकि इतिहासने स्पष्ट कर दिया है कि पुराण तपस्याकी

पूर्णताके पहले स्मृत हुआ, जबकि वेद उसकी पूर्णताके बाद ज्यों-के-त्यों श्रुत हुए। स्मरणमें बुद्धिकी कुण्ठासे गलती हो सकती है, किंतु श्रुत वाक्यमें कुण्ठाका प्रश्न नहीं उठता। इसलिये वेद स्वतः प्रमाण है और पुराण आदि स्मृति-वेदमूलक प्रमाण है। मीमांसाने स्पष्ट कर दिया है कि श्रुतिसे स्मृतिके विरोध होनेपर स्मृति अप्रमाण हो जाती है—

विरोधे त्वनपेक्षं स्यात्····· । (जै० सू० १ । ३ । ३)

पुराणमें उल्लिखित विषय यदि वेदकी प्राप्त शाखाओंमें न मिले तो शास्त्रकारोंने बतलाया है कि पुराणका वह विषय मान्य होता है। तब अनुमान करना चाहिये कि तन्मूलक कोई श्रुति रही होगी। जैमिनि मुनिने तो यहाँतक बतला दिया है कि यदि स्मृतिकी कोई बात श्रुतिमें न मिल सके तो उसे अप्रामाणिक न समझना चाहिये, अपितु यह अनुमान करना चाहिये कि इस स्मृतिका मूल कोई-न-कोई श्रुति अवश्य है, जो अब अप्राप्य है—

''····· **असति ह्यनुमानम्**'' (जै० सू०१ । ३ । ३)

यह पुराण विश्वकी अद्भुत सम्पत्ति है। इसमें सामाजिक, राजनीतिक आदि जितने वाद हैं, सबका किसी-न-किसी रूपमें परिचय मिल जाता है। पुराणके समान तत्त्वोंका प्रतिपादन करनेवाला और कोई ग्रन्थ इस समय नहीं है। वेदकी शाखाओंमें अधिकांशका लोप हो गया है। इसके पठन-पाठनके लिये विशेष सचेष्ट रहनेकी आवश्यकता है।

श्रेष्ठ भगवद्भक्त कौन हैं ?

ये हिताः सर्वजन्तूनां गतासूया अमत्सराः । वशिनो निस्पृहाः शान्तास्ते वै भागवतोत्तमाः ॥
कर्मणा मनसा वाचा परपीडां न कुर्वते । अपरिग्रहशीलाश्च ते वै भागवताः स्मृताः ॥
सत्कथाश्रवणे येषां वर्तते सात्त्विकी मतिः । तद्भक्तविष्णुभक्ताश्च ते वै भागवतोत्तमाः ॥
मातापित्रोश्च शुश्रूषां कुर्वन्ति ये नरोत्तमाः । गङ्गाविश्वेश्वरधिया ते वै भागवतोत्तमाः ॥
व्रतिनां च यतीनां च परिचर्यापराश्च ये । वियुक्तपरनिन्दाश्च ते वै भागवतोत्तमाः ॥
सर्वेषां हितवाक्यानि ये वदन्ति नरोत्तमाः । ये गुणग्राहिणो लोके ते वै भागवताः स्मृताः ॥
आत्मवत् सर्वभूतानि ये पश्यन्ति नरोत्तमाः । तुल्याः शत्रुषु मित्रेषु ते वै भागवतोत्तमाः ॥
अन्येषामुदयं दृष्ट्वा येऽभिनन्दन्ति मानवाः । हरिनामपरा ये च ते वै भागवतोत्तमाः ॥
शिवे च परमेशे च विष्णौ च परमात्मनि । समबुद्ध्या प्रवर्तन्ते ते वै भागवताः स्मृताः ॥

(नारदपुराण १ । ५)

जो सब जीवोंके हितैषी हैं, जो दूसरोंका दोष नहीं देखते, जो किसीसे डाह नहीं करते, मन-इन्द्रियोंको वशमें रखते हैं, निःस्पृह और शान्त हैं, वे उत्तम भगवद्भक्त हैं। जो कर्म, मन और वचनसे दूसरोंको पीड़ा नहीं पहुँचाते, जिनका संग्रह करनेका स्वभाव नहीं है, वे भगवद्भक्त हैं। जिनकी सात्त्विकी बुद्धि उत्तम भगवत्कथा सुननेमें लगी रहती है तथा जो भगवान् और उनके भक्तोंके भी भक्त हैं, वे श्रेष्ठ भगवद्भक्त हैं। जो श्रेष्ठ मनुष्य माता-पिताके प्रति गङ्गा और विश्वनाथका भाव रखकर उनकी सेवा करते हैं, वे श्रेष्ठ भगवद्भक्त हैं। जो व्रतधारियों और यतियोंकी सेवामें लगे रहते हैं और परायी निन्दा कभी नहीं करते, वे श्रेष्ठ भगवद्भक्त हैं। जो श्रेष्ठ पुरुष सबके लिये हितभरे वचन बोलते हैं और केवल गुणोंको ही ग्रहण करते हैं, वे इस लोकमें भगवद्भक्त हैं। जो श्रेष्ठ पुरुष समस्त जीवोंको अपने ही समान देखते हैं तथा शत्रु-मित्रमें भी समान भाव रखते हैं, वे श्रेष्ठ भगवद्भक्त हैं। जो मनुष्य दूसरोंका अभ्युदय देखकर प्रसन्न होते हैं और सदा हरिनामपरायण रहते हैं,वे श्रेष्ठ भगवद्भक्त हैं और जो परमेश्वर शिव एवं परमात्मा विष्णुके प्रति समबुद्धिसे बर्ताव करते हैं, वे श्रेष्ठ भगवद्भक्त हैं।

पुराणों के प्रतिपाद्य विषय

प्रधान वर्ण्य विषय

पञ्चलक्षणात्मक विषय

'इतिहासपुराणाभ्यां वेदार्थमुपबृंहयेत्'—इतिहास एवं पुराणोंसे वेदार्थका उपबृंहण करना चाहिये, क्योंकि ये वेदके उपबृंहण हैं। वेदादि शास्त्रों, मन्वादि धर्मशास्त्रों, वेदान्तादि दर्शनशास्त्रों तथा पुराणेतिहास-ग्रन्थों—इन सभी शास्त्रोंका लक्ष्य है जीवका कल्याण करना। जीवका श्रेयः सम्पादन तथा उसे भगवत्प्राप्ति (मुक्ति) करा देनेमें ही इन सद्ग्रन्थोंका पर्यवसान है, यह आत्यन्तिक सत्य है। किंतु यहाँ एक प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि 'वेदादिके उपस्थित रहनेपर भी इन पुराणग्रन्थोंके आविर्भावकी क्या आवश्यकता पड़ी? जब सभी शास्त्रोंका प्रतिपाद्य एक ही है, सभीका लक्ष्य एक ही है, तब पुराणोंकी क्या उपयोगिता रह जाती है और पुराणों तथा अन्य शास्त्रोंमें क्या अन्तर रह जाता है? बात ठीक है, विचारणीय भी है, किंतु यह तथ्य सर्वदा अविस्मरणीय है कि महर्षि वेदव्यासजी त्रिकालदर्शी थे, जीवमात्रपर उनका यह परम अनुग्रह है कि उन्होंने भगवत्प्राप्तिके साधनोंका जैसा समावेश पुराणों तथा उपपुराणोंमें कर दिया है, वैसा वर्णन किसी भी शास्त्रमें नहीं मिलता। वेदादिके दुरूहतम रहस्योंको भी आख्यान-शैलीके माध्यमसे सरलतम बनाकर पुराणोंमें विस्तारसे समझाया गया है, जिसे एक साधारण बुद्धिका मानव भी अच्छी तरह ग्रहण कर सकता है। यह पुराणोंका अद्भुत वैशिष्ट्य है। विषयगत वैशद्यता भी उसका अपना ही वैशिष्ट्य है। उनमें लौकिक तथा पारलौकिक ज्ञानकी सभी बातोंको—जिनका बीज-रूपमें सूत्रपात वेदादि ग्रन्थोंमें हुआ है, विस्तारसे समझाया गया है। तथापि पुराणोंके अपने कुछ मुख्य प्रतिपाद्य विषय हैं, जिनकी उपस्थितिपर ही तत्तद्-ग्रन्थोंकी 'पुराण' संज्ञा होती है। पुराणोंकी परिभाषा बताते हुए सभीने यह स्वीकार किया है कि ज्ञात-सत्यार्थभूत-पञ्चलक्षणात्मक आख्यान-उपाख्यान, प्रबन्ध-कल्पनासे युक्त ग्रन्थोंका नाम पुराण है। इस सम्बन्धमें सभी पुराणोंमें प्रायः स्वल्पशब्दान्तरसे निम्नश्लोक प्राप्त होता है—

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्॥

अर्थात् १-सर्ग, २-प्रतिसर्ग, ३-वंश, ४-मन्वन्तर तथा ५-वंशानुचरित—पुराणों तथा उपपुराणोंके ये पाँच लक्षण हैं। अर्थात् ये ही पाँच विषय पुराणोंके मुख्य प्रतिपाद्य हैं। विष्णुपुराणके आरम्भमें यह स्पष्ट किया गया है कि इन प्रधान विषयोंके अन्तर्गत किन-किन बातोंका समावेश होता है। जगत् तथा उसके नाना पदार्थोंकी उत्पत्ति अथवा सृष्टिको 'सर्ग' कहा जाता है। सृष्टिके विपरीत अर्थात् प्रलय तथा पुनः सृष्टि-करणको 'प्रतिसर्ग' कहा जाता है। देव, ऋषि तथा मनुष्योंकी संतान-परम्पराका उल्लेख करना 'वंश' कहलाता है तथा सृष्टिक्रमकी काल-गणना 'मन्वन्तर' में मानी जाती है और महर्षियों तथा राजाओंके चरित्रोंके वर्णनको 'वंशानुचरित' कहते हैं।

दशलक्षणात्मक विषय

सभी पुराणोंने उपर्युक्त पञ्चलक्षणोंको ही पुराण तथा उपपुराणोंका प्रमुख वर्ण्य विषय बताया है, किंतु श्रीमद्भागवत तथा ब्रह्मवैवर्तपुराणमें पुराणोंके दस विषयोंका परिगणन करते हुए पाँच लक्षणोंसे युक्त पुराणोंको उपपुराण तथा दस लक्षणोंवाले पुराणोंको महापुराण कहा है। इसका क्या रहस्य है, इससे पूर्व यह जानना आवश्यक है कि ये दस विषय कौन-कौनसे हैं?

श्रीमद्भागवत (२।१०।१-२) में पुराणोंके दस लक्षण इस प्रकार बताये गये हैं—

अत्र सर्गो विसर्गश्च स्थानं पोषणमूतयः।
मन्वन्तरेशानुकथा निरोधो मुक्तिराश्रयः॥
दशमस्य विशुद्ध्यर्थं नवानामिह लक्षणम्।
वर्णयन्ति महात्मानः श्रुतेनार्थेन चाञ्जसा॥

अर्थात् 'इस भागवतपुराणमें सर्ग, विसर्ग, स्थान, पोषण, ऊति, मन्वन्तर, ईशानुकथा, निरोध, मुक्ति और आश्रय—इन दस विषयोंका वर्णन है। इनमें जो दसवाँ आश्रय-तत्त्व है,

उसीका ठीक-ठीक निश्चय करनेके लिये कहीं श्रुतिसे, कहीं तात्पर्यसे और कहीं दोनोंके अनुकूल अनुभवसे महात्माओंने अन्य नौ विषयोंका बड़ी सुगम रीतिसे वर्णन किया है।'

ईश्वरकी प्रेरणासे गुणोंमें क्षोभ होकर रूपान्तर होनेसे जो आकाशादि पञ्चभूत, शब्दादि तन्मात्राएँ, इन्द्रियाँ, अहंकार और महत्तत्त्वकी उत्पत्ति होती है उसे 'सर्ग' कहते हैं। उस विराट् पुरुषसे उत्पन्न ब्रह्माजीके द्वारा जो विभिन्न चराचर सृष्टियोंका निर्माण होता है, उसका नाम है 'विसर्ग'। प्रतिपल नाशकी ओर बढ़नेवाली सृष्टिको एक मर्यादामें स्थिर रखनेसे भगवान् विष्णुकी जो श्रेष्ठता सिद्ध होती है, उसका नाम है 'स्थान'। अपने द्वारा सुरक्षित सृष्टिमें भक्तोंके ऊपर उनकी जो कृपा होती है, उसका नाम है 'पोषण'। मन्वन्तरोंके अधिपति जो भगवद्भक्ति और प्रजापालनरूप शुद्ध धर्मका अनुष्ठान करते हैं, उसे 'मन्वन्तर' कहते हैं। जीवोंकी वे वासनाएँ जो कर्मके द्वारा उन्हें बन्धनमें डाल देती हैं, 'ऊति' नामसे कही जाती हैं। भगवान्के विभिन्न अवतारोंके और उनके प्रेमी भक्तोंकी विविध आख्यानोंसे युक्त गाथाएँ 'ईशकथा' हैं। जब भगवान् योगनिद्रा स्वीकार करके शयन करते हैं, तब इस जीवका अपनी उपाधियोंके साथ उनमें लीन हो जाना 'निरोध' कहलाता है। अज्ञानकल्पित कर्तृत्व, भोक्तृत्व आदि अनात्मभावका परित्याग करके अपने वास्तविक स्वरूप परमात्मामें स्थित होना ही 'मुक्ति' है। इस चराचर जगत्की उत्पत्ति और प्रलय जिस तत्त्वसे प्रकाशित होते हैं, वह परम ब्रह्म ही 'आश्रय' हैं। इसीको परमात्मा कहा गया है। यही परमात्मा सबका अधिष्ठान—आश्रय-तत्त्व है। उसका आश्रय वह स्वयं ही है, दूसरा कोई नहीं।

इन्हीं दस लक्षणोंको कुछ शब्दान्तरके साथ श्रीमद्भागवतके ही द्वादश स्कन्धके सातवें अध्यायके नवें श्लोकमें इस प्रकार बताया गया है—

सर्गोऽस्याथ विसर्गश्च वृत्ती रक्षान्तराणि च।
वंशो वंशानुचरितं संस्था हेतुरपाश्रयः॥

अर्थात् १-सर्ग, २-विसर्ग, ३-वृत्ति, ४-रक्षा, ५-मन्वन्तर, ६-वंश, ७-वंशानुचरित, ८-संस्था, ९-हेतु तथा १०-अपाश्रय-ये दस लक्षण पुराणोंके हैं।

जब मूलप्रकृतिमें लीन गुण क्षुब्ध होते हैं, तब महत्तत्त्वकी उत्पत्ति होती है। महत्तत्त्वसे तामस, राजस और वैकारिक (सात्त्विक) तीन प्रकारके अहंकार बनते हैं। त्रिविध अहंकारसे ही पञ्चतन्मात्रा, इन्द्रिय और विषयोंकी उत्पत्ति होती है। इसी उत्पत्ति-क्रमका नाम 'सर्ग' है। परमेश्वरके अनुग्रहसे सृष्टिकी सामर्थ्य प्राप्त करके महत्तत्त्व आदि पूर्वकर्मोंके अनुसार अच्छी और बुरी वासनाओंकी प्रधानतासे एक बीजसे दूसरे बीजके समान जो यह चराचर शरीरात्मक जीवकी उपाधिकी सृष्टि करते हैं, इसे 'विसर्ग' कहते हैं। चर प्राणियोंके लिये अचर-पदार्थ—जीवन-निर्वाहकी सामग्री 'वृत्ति' है।

भगवान् युग-युगमें पशु-पक्षी, मनुष्य, ऋषि, देवता आदिके रूपमें अवतार ग्रहण करके अनेक लीलाएँ करते हैं। इन्हीं अवतारोंमें वे वेदधर्मके विरोधियोंका संहार भी करते हैं। उनकी यह अवतार-लीला विश्वकी रक्षाके लिये होती है, इसीलिये उसका नाम 'रक्षा' है। मनु, देवता, मनुपुत्र, इन्द्र, सप्तर्षि और भगवान्के अंशावतार—इन्हीं छः बातोंकी विशेषतासे युक्त समयको 'मन्वन्तर' कहते हैं। ब्रह्माजीसे जितने राजाओंकी सृष्टि हुई है, उनकी भूत, भविष्य और वर्तमानकालीन संतान-परम्पराको 'वंश' कहते हैं। उन राजाओं तथा उनके वंशधरोंके चरित्रका नाम 'वंशानुचरित' है। इस विश्व-ब्रह्माण्डका स्वभावसे ही प्रलय हो जाता है। इस प्रलयके चार भेद हैं—नैमित्तिक, प्राकृतिक, नित्य और आत्यन्तिक। तत्त्वज्ञ विद्वानोंने इन्हींको 'संस्था' कहा है। पुराणोंके लक्षणमें 'हेतु' नामसे जिसका व्यवहार होता है, वह 'जीव' ही है; क्योंकि वास्तवमें वही सर्ग-विसर्ग आदिका 'हेतु' है और अविद्यावश अनेक प्रकारके कर्मकलापमें उलझ गया है। जो लोग उसे चैतन्यप्रधानकी दृष्टिसे देखते हैं, वे उसे अनुशयी अर्थात् प्रकृतिमें शयन करनेवाला कहते हैं और जो उपाधिकी दृष्टिसे कहते हैं, वे उसे अव्याकृत अर्थात् प्रकृतिरूप मानते हैं। जीवकी वृत्तियोंके तीन विभाग हैं—जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति। जो इन अवस्थाओंमें इनके अभिमानी विश्व, तैजस और प्राज्ञके मायामय रूपोंमें प्रतीत होता है और इन अवस्थाओंसे परे तुरीयतत्त्वके रूपमें भी लक्षित होता है, वही ब्रह्म है, उसीको यहाँ 'अपाश्रय' शब्दसे कहा गया है।

श्रीमद्भागवतके दो स्थलोंपर निर्दिष्ट उपर्युक्त दस लक्षणोंमें सर्वथा साम्य है, यह बात दोनोंके अर्थावबोधसे स्पष्ट

हो जाती है। शब्दान्तर है, परंतु तात्पर्यमें अभेद है। निम्न तालिकासे यह स्पष्ट हो जायगा कि किस विषयका किसके साथ साम्य है—

क्रम	द्वितीय स्कन्धके विषय	द्वादश स्कन्धके विषय
१-	सर्ग	सर्ग
२-	विसर्ग	विसर्ग
३-	स्थान	वृत्ति
४-	पोषण	रक्षा
५-	ऊति	हेतु
६-	मन्वन्तर	अन्तर
७-	ईशानुकथा	वंश-वंशानुचरित
८-	निरोध	संस्था—नित्य-प्रलय, नैमित्तिक प्रलय, प्राकृतिक प्रलय
९-	मुक्ति	संस्था—आत्यन्तिक प्रलय
१०-	आश्रय	अपाश्रय

श्रीमद्भागवतके समान ही ब्रह्मवैवर्तपुराणने भी पुराणोंको दशलक्षणात्मक बताते हुए उनके दस विषयोंको इस प्रकार गिनाया है—

सृष्टिश्चापि विसृष्टिश्च स्थितिः तेषां च पालनम्।
कर्मणां वासना वार्ता मनूनां च क्रमेण च॥
वर्णनं प्रलयानां च मोक्षस्य च निरूपणम्।
तत्कीर्तनं हरेरेव वेदानां च पृथक् पृथक्॥
दशाधिकं लक्षणं च महतां परिकीर्तितम्।

(श्रीकृष्णजन्मखण्ड १३३।८-१०)

अर्थात् 'सृष्टि, विसृष्टि, स्थिति, उनका पालन, कर्मोंकी वासना, मनुओंका वर्णन, प्रलयोंका वर्णन, मोक्षका निरूपण, श्रीहरिका गुणगान तथा देवताओंका पृथक्-पृथक् वर्णन—ये दस विषय पुराणोंके हैं।' ध्यानसे देखनेपर यह निश्चित होता है कि श्रीमद्भागवतके दस लक्षणोंको ही यहाँ शब्दान्तरके साथ कहा गया है। अर्थमें कोई भेद नहीं है।

पाँच लक्षणोंमें दस लक्षणोंका अन्तर्भाव

सूक्ष्म विवेचन करनेपर यही निष्कर्ष निकलता है कि अन्य पुराणोंमें सर्ग-प्रतिसर्ग आदि जो पाँच विषय गिनाये गये हैं, श्रीमद्भागवत तथा ब्रह्मवैवर्तमें उन्हींको विस्तृत कर दस विषय कहा गया है। यह भी कहा जा सकता है कि दश-लक्षणात्मक विषय पूर्वोक्त पाँच विषयोंकी विस्तृत व्याख्या-स्वरूप ही हैं। दस लक्षणवाले पुराणको महापुराण मानना तथा पाँच लक्षणवाले पुराणको उपपुराण माननेकी जो बात श्रीमद्भागवतमें कही गयी है, उसका तात्पर्य मात्र यही है कि वह श्रीमद्भागवतका ही मुख्य रूपसे लक्षण है, पुराण-सामान्यका नहीं। क्योंकि ऐसा न माननेपर अर्थात् दश-लक्षणात्मक पुराणोंको ही महापुराण माननेपर तो केवल श्रीमद्भागवत तथा ब्रह्मवैवर्तपुराण—ये दो ही महापुराणकी कोटिमें आयेंगे, अन्य सभी उपपुराण कहे जायँगे। तब तो कहीं अतिव्याप्ति होगी, कहीं अव्याप्ति हो जायगी। जबकि लक्षण या परिभाषाको अतिव्याप्ति, अव्याप्ति तथा असम्भव—इन तीन दोषोंसे रहित होना चाहिये। पुराणोंमें विशेष आदरके योग्य विष्णु, पद्म, स्कन्द, मत्स्य तथा वायु आदिमें यद्यपि दस लक्षणोंकी बात स्पष्ट-रूपसे नहीं दीखती तथापि वे सभी विषय इनमें आ गये हैं। अतः इस दृष्टिसे भी ये उपपुराण नहीं कहे जा सकते।

इसी प्रकार श्रीमद्भागवत तथा विष्णुपुराणमें भी अद्भुत साम्य है। दोनोंके विषय प्रायः एक समान हैं। ऐसी स्थितिमें विष्णुको उपपुराण कथमपि नहीं कहा जा सकता। अतः महापुराणोंके लिये पाँच लक्षणोंका होना आवश्यक है न कि दस लक्षणोंका। वास्तवमें स्थिति यह है कि जो दस विषय बताये गये हैं, उनमेंसे सर्ग, विसर्ग, वंश, वंशानुचरित तथा मन्वन्तर—इन पाँच विषयोंको तो उसमें शब्दतः ग्रहण किया ही गया है, शेष पाँचका भी अन्तर्भाव इन्हीं पाँचोंमें हो जाता है, इसका विशेष विवेचन न करके यहाँ एक तालिका प्रस्तुत की जा रही है, जिससे यह बात स्पष्ट हो जायगी—

१-सर्ग—सर्ग, विसर्ग, हेतु, ऊति, आश्रय, अपाश्रय।

२-प्रतिसर्ग—संस्था, निरोध।

३-मन्वन्तर—अन्तर।

४-५-वंश-वंशानुचरित—वंश, वृत्ति, स्थान-रक्षा, पोषण-ईशानुकथा।

जिन विद्वानोंने बहुत अधिक परिश्रमसे ऊहापोहपूर्वक दस लक्षण और पाँच लक्षणोंकी तुलना की है, वे सभी अन्तमें इस निष्कर्षपर पहुँचे हैं कि पञ्चलक्षणात्मकता ही वास्तविक

रूपसे पुराणोंकी मुख्य परिभाषा और स्वरूप है और सभी दस लक्षण इन पाँचोंमें ही अन्तर्निहित रहते हैं।

पुराणोंके पाँच लक्षणों अथवा पाँच विषयोंके स्थिर हो जानेपर एक महत्त्वपूर्ण बात यह हो जाती है कि पञ्च-लक्षणात्मक जो वर्णन पुराणोंमें है, उस वर्णनका लक्ष्य भी प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष-रूपसे ईश्वरतत्त्वका ही निरूपण करना है, क्योंकि सभी पुराणोंने उसे ही अन्तिम सत्य स्वीकार किया है। उसे कहीं विष्णु, कहीं कृष्ण, कहीं शिव तथा कहीं देवी कहा गया है और यही भक्तितत्त्वका बीजभूत भी है। विष्णुपुराणने (१।१।३१में) तो स्पष्ट ही कह दिया है कि—

विष्णोः सकाशादुद्भूतं जगत् तत्रैव च स्थितम्।
स्थितिसंयमकर्तासौ जगतोऽस्य जगच्च सः॥

अर्थात् 'यह जगत् विष्णुसे उत्पन्न हुआ है, उन्हींमें स्थित है, वे ही इसकी स्थिति और लयके कर्ता हैं तथा यह जगत् भी वे ही हैं।'

इसीलिये श्रीमद्भागवतमें दस लक्षणोंके विवेचन-प्रसंगमें कह दिया गया है कि दसवाँ जो आश्रय (ब्रह्म, भगवान्) नामक तत्त्व है, उसीके स्वरूप-परिज्ञानके लिये ही नौ तत्त्वोंको बताया गया है। स्कन्दपुराणका कथन है कि वेदादि शास्त्रों, रामायण, महाभारत और पुराणोंमें आदि-मध्य तथा अन्तमें अर्थात् सर्वत्र हरिका ही गुणगान रहता है[१]। इससे यह स्पष्ट होता है कि मुख्य तथा अवान्तररूपसे 'भगवच्चर्चा' ही पुराणोंका अन्यतम प्रतिपाद्य विषय है। आख्यानों, उपाख्यानों तथा गाथाओंके द्वारा पुराणोंमें उसी परम प्रभुकी महिमाका गान किया गया है।

पुराणोंमें सभी शास्त्रों, विद्याओं, कलाओं तथा ज्ञान-विज्ञानका समावेश

पुराण अनन्त ज्ञान-राशिके भण्डार हैं। इनका साहित्य अत्यन्त विशाल है। लौकिक तथा पारलौकिक ज्ञान-विज्ञानके सभी विषय इनमें भरे पड़े हैं। सृष्टिसे आजतकके तथा भविष्यके भी इतिहासको ये अपनेमें सँजोये हुए हैं। पुराणोंका आविर्भाव वेदार्थके उपबृंहणके लिये हुआ है। वर्तमानकालतक जितने ज्ञान-विज्ञान, कला तथा विद्याके क्षेत्रोंका और उनकी शाखा-प्रशाखाओंका आविष्कार हुआ है, त्रिकालदर्शी ऋषियोंने इन सभीका सारांश सूक्ष्मरूपसे इन पुराणोंमें संनिवेश किया है। इनका महर्षि वेदव्यासजीने सुचारुरूपसे सम्पादन और वर्गीकरण कर पुराण-ग्रन्थोंके रूपमें प्रस्तुत किया है। महर्षि वेदव्यासजीका यह अद्भुत वैशिष्ट्य है कि उन्होंने वेदादि शास्त्रोंमें प्रतिपादित जटिलतम विषयोंको भी आख्यान तथा उपाख्यानोंके माध्यमसे सर्वसाधारणके लिये भी बोधगम्य बना दिया है। यद्यपि पुराणों तथा उपपुराणोंमें कथाभाग अधिक है तथापि जिज्ञासुओंके लिये अनेक विद्या, कला, ज्ञान, विज्ञान तथा शास्त्रोंका भी इनमें सूक्ष्म किंतु पुराण-शैलीमें सुस्पष्ट-बोधगम्य विवेचन हुआ है। इस प्रकारके पुराणोंमें वायु, ब्रह्माण्ड, अग्नि, गरुड, नारद, शिवधर्मोत्तर तथा विष्णुधर्मोत्तर प्रमुख रूपसे गणनीय हैं। अग्निपुराणमें तो सभी विद्याओं (परा, अपरा) को बताया गया है—'**आग्नेये हि पुराणेऽस्मिन् सर्वविद्याः प्रदर्शिताः।**' (अग्नि० ३८३।५१)। विश्वकोशोंकी परम्परा इन्हींको देखकर आरम्भ हुई होगी। अतः प्राचीनतम विश्वकोश होनेपर भी पवित्रता, रचना-सौष्ठव और श्रेष्ठ पद्यबद्धताको देखते हुए ये आज भी सबसे श्रेष्ठ हैं। ये कण्ठस्थ करनेमें सुगम हैं। इन पुराणों तथा उपपुराणोंमें इतने अधिक विषयोंका समावेश है कि यदि उसकी एक सूचीमात्र भी बनायी जाय तो एक विशाल ग्रन्थ तैयार हो जायगा, क्योंकि विद्याएँ तथा कलाएँ अनन्त हैं, उनकी कोई इयत्ता नहीं है, उनका परिगणन असम्भव-सा है। तथापि पुराणोंमें एवं उपपुराणोंमें वेदादि शास्त्रों, मन्वादि धर्मशास्त्रों तथा अन्य कला-विज्ञान एवं उनके विषयोंका जिस रूपमें समावेश हुआ है, उसका संख्या-निर्देशपूर्वक

१-वेदे रामायणे चैव पुराणेषु च भारते। आदिमध्यावसानेषु हरिरेकोऽत्र नापरः॥ (स्कन्द० काशी० ९५।१२, हरिवंश २।४९ में भी कुछ शब्दान्तरसे यह श्लोक प्राप्त होता है।)

संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है, विशेष जानकारीके लिये पुराण-वाङ्मयका गम्भीर अध्ययन करना चाहिये।

चार वेद—पुराणोंमें वेदोंका ही विस्तार है। यह तथ्य निर्विवाद है। चारों संहिताओं, ब्राह्मण-ग्रन्थों तथा आरण्यकोंके विषय यहाँ पर्याप्त रूपसे विवेचित हैं। ऋग्वेद[1]की पूरी जानकारीके लिये विष्णुपुराणके तृतीय अंशके चतुर्थ अध्यायका अवलोकन किया जा सकता है। इसी प्रकार यजुर्वेद[2] शुक्ल तथा कृष्ण—दोनों शाखाओंका विशद वर्णन उसीके पाँचवें अध्यायमें है। फिर साम[3] तथा अथर्ववेदकी[4] शाखा-प्रशाखाओंका विवेचन छठे अध्यायमें हुआ है। इसी प्रकार श्रीमद्भागवतके द्वादश स्कन्धके छठे तथा सातवें अध्यायमें चारों वेदोंकी शाखा-प्रशाखाओंका सूक्ष्म वर्णन है। अग्निपुराणमें ऋग्विधान, यजुर्विधान आदि चारों वेदोंके विधान-ग्रन्थोंका सम्यक् रूपसे समावेश किया गया है। इसीके साथ वेदोंके मन्त्र और सूक्त भी विभिन्न कर्मकाण्डोंके प्रसङ्गमें उल्लिखित हैं। वैष्णवोंमें भागवत तथा विष्णु आदि पुराणोंकी एवं 'पुरुषसूक्त' की महिमा अपरिमेय है। भागवत तथा विष्णु आदि पुराणोंने समग्ररूपसे इसका अनेक बार उल्लेख किया है। पुराणोंमें वैदिक संहिताओंके मन्त्रोंकी व्याख्या भी विस्तारसे मिलती है। '**विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्र वोचम्**' (ऋक्० १।१५४।१) की व्याख्या भागवत (२।७।४०)में की गयी है। यहाँतक कि किंचित् शब्दान्तरके साथ पूरा मन्त्र यथावत् मिलता है। इसी प्रकार '**ईशावास्यमिदं सर्वम्**०' इस ईशोपनिषद्के मन्त्रकी व्याख्या भागवत (८।१।१०) में मिलती है। '**द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया**०' (ऋग्वेद १।१६४।२०, अथर्व० ९।९।२०) नामक प्रसिद्ध वैदिक मन्त्रकी व्याख्या भागवतके एकादश स्कन्धके ग्यारहवें अध्यायके छठे श्लोकमें बड़ी विशदतासे की गयी है। इसी प्रकार '**चत्वारि शृंगा त्रयोऽस्य पादाः**०' इस ऋग्वेदके पूरे मन्त्रको भागवतने ८।१६।३१ में यथावत् लेते हुए इसका यज्ञपरक अर्थ किया है। वैदिक मन्त्रों तथा सूक्तोंके साथ ही वेदोंमें वर्णित आख्यानोंको पुराणोंमें विस्तारसे देखा जा सकता है, जैसे विष्णु आदिके अवतारकी कथाएँ, पुरूरवा-उर्वशी-आख्यान, शुनःशेप-आख्यान, नाचिकेतोपाख्यान, वृत्रासुर-आख्यान आदि। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि संहिताओंके विषय पुराणोंमें विशद-रूपसे विवेचित हैं।

चार उपवेद—आत्यन्तिक सूक्ष्म गवेषणापूर्वक विचार करनेपर ऋग्वेदका स्थापत्यवेद[5], यजुर्वेदका धनुर्वेद[6], सामवेदका गान्धर्ववेद[7] और अथर्ववेदका आयुर्वेद[8] उपवेद निश्चित होता है। विष्णुधर्मोत्तरपुराणमें इन चारों उपवेदोंका साङ्गोपाङ्ग वर्णन हुआ है। स्थापत्यवेद और शिल्पशास्त्रका वर्णन इसमें सर्वाधिक विस्तारसे है। धनुर्वेदका ही वर्णन इसमें प्रायः सौ अध्यायोंमें प्राप्त होता है। गरुडपुराण अध्याय १४६से २०४ तक आयुर्वेदका सम्यक् वर्णन है।

आयुर्वेदके उपभेदोंका भी वर्णन पुराणोंमें प्राप्त होता है। अग्निपुराणके २८९वें अध्यायमें शालिहोत्रसार अश्वायुर्वेदका[9] वर्णन है और २९१वें अध्यायमें बुधके ग्रन्थ गजवैद्यकका सारांश वर्णित है, जिसे गजायुर्वेद[10] कहा गया है। इसके साथ ही २९२वें अध्यायमें गवायुर्वेदका[11] तथा शान्त्यायुर्वेदका[12] वर्णन है। इनमें घोड़े, हाथी तथा गाय आदिकी चिकित्साका वर्णन मिलता है। इसी अग्निपुराणके २८२वें अध्यायमें वृक्षायुर्वेदका[13] भी वर्णन है। इसका अधिक वर्णन विष्णुधर्मोत्तरमें है। अन्य पशुओंकी चिकित्सा, उनके लक्षण तथा शान्तिके मन्त्र भी विष्णुधर्मोत्तर, अग्नि तथा गरुडपुराणमें विस्तारसे विवेचित हैं।

छः वेदाङ्ग—वेदाङ्गोंमें व्याकरण[14] प्रमुख है। इसका नारदपुराणके पूर्वभागके द्वितीय पादके ५१वें अध्यायमें सूक्ष्म किंतु सुन्दर विवेचन हुआ है। नारदपुराणका व्याकरण 'कातन्त्र'-व्याकरणका सार है, जिसे माहेश्वर या कौमार-व्याकरण कहा जाता है। इसी प्रकार अग्निपुराणके ३४९वें अध्यायसे ३५९वें अध्यायतक लगभग १० अध्यायोंमें व्याकरणशास्त्रका वर्णन है। छन्दःशास्त्र[15] या पिङ्गलशास्त्रका वर्णन गरुडपुराणके २०७ से २१२ अध्यायतक, नारदपुराणके पूर्व-भागके द्वितीय पादके ५७वें अध्यायमें वैदिक तथा लौकिक छन्दोंका वर्णन है। इसी प्रकार अग्निपुराणके ३२८वें अध्यायसे ३३५ अध्यायतक

छन्दःशास्त्रका विशद निरूपण मिलता है। ज्योतिषशास्त्रके[१६] लिये नारदपुराण तथा विष्णुधर्मोत्तरका विवेचन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। नारदपुराणके तीन अध्यायों (१। २। ५४-५६) में त्रिस्कन्ध ज्योतिष (सिद्धान्त, संहिता तथा होरा) का सुन्दर निरूपण है जो नारदीय ज्योतिषके नामसे विख्यात है। निरुक्त[१७] सम्बन्धी सामग्री पुराणोंमें अत्यल्प है। नारदपुराणके पूर्वभागके द्वितीय पादके ५३वें अध्यायमें निरुक्तसे सम्बद्ध थोड़ेसे श्लोक प्राप्त होते हैं, जो मुख्यतया व्याकरणशास्त्रके स्वरवैदिक-प्रक्रिया एवं धातुप्रकरणसे अभिन्न-से प्रतीत होते हैं।

वेदादिके पाठका विधान, स्वरोंके उच्चारणकी विधि, सामवेदकी गान-प्रक्रिया और वर्णोंके स्पष्ट उच्चारणकी विधि जिस शास्त्रमें वर्णित हो उसे 'शिक्षा'[१८] शास्त्र कहा जाता है। इसका वर्णन नारदपुराणके पूर्वभागके द्वितीय पादके ५०वें अध्यायमें प्रायः तीन सौ श्लोकोंमें तथा अग्निपुराणके ३३६ वें अध्यायमें हुआ है। कल्पों[१९] का वर्णन प्रायः पुराणोंमें भरा पड़ा है। कल्पमें वैदिक एवं लौकिक कर्मकाण्डोंका समन्वय है, जिनमें श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र, स्मार्तसूत्र और शुल्बसूत्र—ये चार गृहीत होते हैं। इनका वर्णन भविष्यपुराणमें सर्वाधिक है, जिसमें यज्ञ, इष्टापूर्त तथा संस्कारकी विधियाँ कही गयी हैं। वैसे कल्पोंके पाँच भेद होते हैं—(१) नक्षत्रकल्प, (२) वैतानकल्प, (३) संहिताविधानकल्प, (४) आङ्गिरसकल्प और (५) शान्तिकल्प। नक्षत्रकल्पमें यज्ञ और संस्कार आदि कर्मोंके मुहूर्तोंका निर्णय होता है। वैतानकल्पमें यज्ञों (हविर्यज्ञ, सोमयज्ञ और पाकयज्ञ—इन तीन संस्थाओं) की साङ्गोपाङ्ग विधि निरूपित होती है। संहिताकल्पमें विशेषकर वेदनिर्दिष्ट अश्वमेध, राजसूयादि यज्ञों और उससे भिन्न भी सभी विधियोंकी सम्पादन-प्रक्रिया प्राप्त होती है। आङ्गिरसकल्पमें शत्रु-राष्ट्रोंके लिये मारण, मोहन, वशीकरण तथा उच्चाटनादि अभिचारकर्मोंका निर्देश है। शान्तिकल्पमें विविध दैव, अन्तरिक्ष, अद्भुत आदि उत्पातों, ईति, भीति आदि भयोंके निवारणका तथा शत्रुराष्ट्रोंद्वारा किये गये मारण-मोहनादि प्रयोगोंकी शान्तिविधिका वर्णन है। ये सभी विषय पुराणोंमें विशेषकर भविष्य, अग्नि, गरुड तथा विष्णुधर्मोत्तरमें विस्तारसे प्राप्त होते हैं।

षड्दर्शन—पुराणोंमें सर्वदर्शनसंग्रहके सभी दर्शनोंके मूलभूत सिद्धान्तोंका समावेश हो गया है। इनमें सबसे प्राचीनतम दर्शन सांख्यदर्शन[२०] माना जाता है। सांख्यशास्त्रका साङ्गोपाङ्ग वर्णन ब्रह्मपुराणके २३५वें अध्यायसे लेकर २४४ तक प्रायः दस अध्यायोंमें हुआ है, जो करालजनक तथा महर्षि वसिष्ठके संवादके रूपमें वर्णित है। भागवतके तीसरे स्कन्धके दस अध्यायोंमें कपिल-देवहूति-संवादमें सेश्वर-सांख्यका वर्णन हुआ है, जिसमें २५ तत्त्वोंका विस्तारसे विवेचन है; किंतु एकादश स्कन्धके २२वें अध्यायमें २८ तत्त्वतक परिगणित हुए हैं। योग[२१] का विषय प्रायः प्रत्येक पुराणोंमें आया है; किंतु सबसे विशद वर्णन तथा योगदर्शनके साक्षात् पद्यबद्धानुवाद-जैसा ही वर्णन लिंगपुराणके पूर्वार्धके ८ से १० अध्यायों तथा ६६ से ८८ अध्यायोंमें हुआ है। प्राचीनतम योगशास्त्रका विशद वर्णन विष्णुपुराणके ६ठे अंशमें खाण्डिक्य और केशिध्वजके संवादमें तथा स्कन्दपुराणके काशीखण्डके ४१वें अध्यायमें लगभग १९० श्लोकोंमें हुआ है।

पूर्वमीमांसा[२२], प्राचीनन्याय[२३] नव्यन्याय और वैशेषिकदर्शनका[२४] पुराणोंमें यद्यपि स्वतन्त्र शीर्षकके रूपमें वर्णन परिलक्षित नहीं होता तथापि पुराणोंके विभिन्न प्रकरणोंमें इन दर्शनोंके सिद्धान्तोंका प्रतिपादन हुआ है। विष्णुधर्मोत्तर-पुराणके तृतीय खण्डके चार, पाँच तथा छः अध्यायोंमें इनका कुछ संक्षेपसे किंतु अतिस्पष्ट विवेचन किया गया है। वहाँ न केवल विवेचन ही है, अपितु अत्यन्त प्रौढ़ पदावलीमें दर्शन-शास्त्रोंकी भाँति गद्ययुक्त लम्बे सूत्रोंद्वारा पारिभाषिक शब्दावलीमें उनके विषयोंको वर्गीकृत कर समझाया गया है। उदाहरणके लिये न्यायदर्शनके पदार्थोंकी परिगणना इस प्रकार की गयी है—'**अधिकरणं योगः पदार्थः हेत्वर्थ उद्देश्यो निदेशः प्रदेशोऽतिदेशः अपवर्गो वाक्यविशेषोऽर्थापत्तिः प्रसंग एकान्तो नैकान्तः पूर्वपक्षो निर्णयो विधानपर्यायोऽति-क्रान्तावेक्षणं संशयो व्याख्यानमनुमतिः स्वसंज्ञानिर्वचनं दृष्टान्तो वियोगो विकल्पः समुच्चयोऽर्थ इति।**' (विष्णुधर्मो० ३। ६ गद्यभाग)।

आत्मतत्त्व, औपनिषदज्ञान, उत्तरमीमांसा, ब्रह्मसूत्र या

वेदान्तका[२५] निर्देश सभी पुराणोंमें विस्तारसे हुआ है। जिनमें भागवतका एकादश स्कन्ध, विष्णुपुराणका छठा अंश, गरुडपुराणके पूर्वभागके २३५ से २३९ तकके अध्याय मुख्य हैं। ब्रह्मसूत्रमें प्रायः आरम्भके सूत्र **'अथातो ब्रह्म-जिज्ञासा'** (१।१।१) से लेकर द्वितीय अध्यायके **'अविरोधश्चन्दनवत्'** (२।३।२३) सूत्रतक इस आत्मतत्त्व (ब्रह्म)की सर्वव्यापकताका वर्णन किया गया है और अन्तमें अर्चि और धूममार्गका सभी श्रुतियोंसे समन्वय दिखाकर आत्माको सर्वव्यापक और मुक्त दिखाया गया है। **'अर्चिरादिना तत्प्रथितेः'** (४।३।१) से ब्रह्मप्राप्तिकी बात कही गयी है। ब्रह्मसूत्रके इन सूत्रोंका भाष्य विष्णुपुराणके द्वितीय अंशके १५ तथा १६ वें अध्यायमें कितने सुन्दर ढंगसे हुआ है, इसके लिये एक श्लोक उदाहरण-स्वरूप दिखलाया जा रहा है, जिसमें ऋभु तथा निदाघके संवादमें आत्मा (परमात्मा)की सर्वव्यापकता दिखलायी गयी है—

एकः समस्तं यदिहास्ति किञ्चित्
तदच्युतो नास्ति परं ततोऽन्यत्।
सोऽहं स च त्वं स च सर्वमेत-
दात्मस्वरूपं त्यज भेदमोहम्॥

(विष्णु० २।१६।२३)

अर्थात् 'इस संसारमें जो कुछ है, वह सब एक आत्मा ही है और वह अविनाशी है, उससे अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। मैं, तू और ये सब आत्म-स्वरूप ही हैं, अतः भेद-ज्ञानरूप मोहको छोड़।'

इसी प्रकार श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके चौदहवें अध्याय तथा तीसरे स्कन्धके ३२वें अध्यायमें वेदान्तके सिद्धान्तोंका महत्त्वपूर्ण वर्णन है। ब्रह्मसूत्रके प्रथम अध्यायके प्रथमपादके द्वितीय सूत्र **'जन्माद्यस्य यतः'** में ब्रह्मका लक्षण किया गया है। श्रीमद्भागवतका प्रारम्भ ही इस सूत्रको लेकर हुआ है। यथा—

जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट्
तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये मुह्यन्ति यत्सूरयः।
तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गोऽमृषा
धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्यं परं धीमहि॥

(१।१।१)

अर्थात् 'जिससे इस जगत्की सृष्टि, स्थिति और प्रलय होते हैं—क्योंकि वह सभी सद्रूप पदार्थोंमें अनुगत है और असत्-पदार्थोंसे पृथक् है; जड नहीं चेतन है, परतन्त्र नहीं स्वयं प्रकाश है, जो ब्रह्मा अथवा हिरण्यगर्भ नहीं प्रत्युत उन्हें अपने संकल्पसे ही जिसने उस वेदज्ञानका दान किया है, जिसके सम्बन्धमें बड़े-बड़े विद्वान् भी मोहित हो जाते हैं, जैसे तेजोमय सूर्यरश्मियोंमें जलका, जलमें स्थलका और स्थलमें जलका भ्रम होता है, वैसे ही जिसमें यह त्रिगुणमयी जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्तिरूपा सृष्टि मिथ्या होनेपर भी अधिष्ठान-सत्तासे सत्यवत् प्रतीत हो रही है, उस अपनी स्वयंप्रकाश ज्योतिसे सर्वदा और सर्वथा माया और मायाकार्यसे पूर्णतः मुक्त रहनेवाले परम सत्यरूप परमात्माका हम ध्यान करते हैं।'

श्रीमद्भागवतके अन्तमें भी स्पष्ट-रूपसे कहा गया है कि 'समस्त उपनिषदोंका सार है ब्रह्म और आत्माका एकत्वरूप अद्वितीय सद्वस्तु।' यही श्रीमद्भागवतका प्रतिपाद्य विषय है। इसके निर्माणका प्रयोजन है एकमात्र कैवल्यमोक्ष। इस प्रकार अथ तथा इतिकी एकवाक्यतासे वेदान्तशास्त्रका ही परिपाक श्रीमद्भागवतपुराणमें हुआ है।

वैष्णवदर्शन और पुराण—वेदान्त-दर्शनके अन्तर्गत तीन ग्रन्थ हैं—'उपनिषद्', 'वेदान्तसूत्र' तथा 'श्रीमद्भगवद्-गीता।' इन तीनोंको 'प्रस्थानत्रयी' कहा जाता है। प्रथम प्रस्थान अर्थात् ईशादि बारह उपनिषदोंका नाम 'श्रुतिप्रस्थान' है। दूसरा प्रस्थान जिसे 'न्यायप्रस्थान' भी कहते हैं, 'ब्रह्मसूत्र' है। इन ब्रह्मसूत्रोंका नाम वेदान्तसूत्र, शारीरकमीमांसा, उत्तरमीमांसा भी है। ब्रह्मसूत्रोंके रचयिता भगवान् बादरायण अथवा श्रीवेदव्याजी हैं। तीसरा प्रस्थान 'स्मृतिप्रस्थान' या 'गीता-प्रस्थान' कहलाता है। यहाँ केवल प्रस्थानत्रयीके द्वितीय प्रस्थान ब्रह्मसूत्रके वैष्णव भाष्योंपर विचार किया जा रहा है।

ब्रह्मसूत्रके आधारपर अनेकों वैष्णवाचार्योंने अपने मतवाद स्थापित किये हैं और भाष्यकी रचना की है, जिनमें रामानुजभाष्य, वल्लभाचार्यभाष्य, मध्वाचार्यभाष्य, निम्बार्कभाष्य, भास्कराचार्यभाष्य, विज्ञानभिक्षुभाष्य, श्रीकण्ठाचार्यभाष्य प्रमुख हैं। ये सभी आचार्य शंकरके

परवर्ती हैं। इन सभी प्रधान आचार्योंने अपने मतवादकी पुष्टिमें उपनिषदोंके साथ-साथ विष्णु, भागवत आदि पुराणोंके अनेक वचनोंको उद्धृत किया है, जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि पुराणोंमें इन आचार्योंके सिद्धान्तोंका पूर्ण परिपाक उपलब्ध है। यहाँ इन्हीं प्रमुख आचार्योंके मतोंका पौराणिक परिप्रेक्ष्यमें संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है।

विशिष्टाद्वैतदर्शन[२६]—इसके संस्थापक श्रीरामानुजाचार्य हैं। ब्रह्मसूत्रपर इनकी व्याख्या 'श्रीभाष्य' के नामसे विख्यात है। इनका कहना है कि ब्रह्म एक है और उसमें तीन वस्तुएँ हैं—(१) जड प्रकृति, (२) चेतन आत्मा और (३) सर्वनियन्ता, सत्यज्ञान, आनन्दस्वरूप निखिल कल्याणगुणोंका भाजन परमेश्वर। ब्रह्मका अद्वैत ही इन तीनों पदार्थोंकी समष्टिका नाम है। इस प्रकारके विशिष्ट ब्रह्मको श्रीरामानुजाचार्य विशिष्टाद्वैत कहते हैं। अपने श्रीभाष्यमें उन्होंने अपने मतकी पुष्टिमें विष्णुपुराणके अनेक वचन उद्धृत किये हैं। आचार्यने विष्णुपुराणके आधारपर पहले परमात्माको ज्ञानस्वरूप मानकर फिर जीव और मायासे विशिष्ट उसे अनेक रूपोंमें विवर्तित दिखाया है और फिर तत्त्वतः उसे परमात्मा माना है। इस सिद्धान्तके प्रतिपादनमें उन्होंने विष्णुपुराणके द्वितीय अंशके १२वें अध्यायके ३९ से ४५ तकके श्लोकोंको विशेष समारोहके साथ अपने श्रीभाष्य (श्रीवत्सप्रदीप, मद्राससे प्रकाशित, वर्ष १९६३)के पृष्ठ २७ में उद्धृत किया है। उनमेंसे एक-दो वचन इस प्रकार हैं। यथा—

ज्ञानस्वरूपो भगवान् यतोऽसावशेषमूर्तिर्न तु वस्तुभेदः।
ततो हि शैलाब्धिधरादिभेदाञ्जानीहि विज्ञानविजृम्भितानि॥

(२।१२।३९)

अर्थात् 'क्योंकि भगवान् विष्णु ज्ञानस्वरूप हैं, इसलिये वे सर्वमय हैं, परिच्छिन्न पदार्थाकार नहीं हैं। अतः इन पर्वत, समुद्र और पृथ्वी आदि भेदोंको तुम एकमात्र विलास जानो।' इसी प्रकार—

यदा तु शुद्धं निजरूपि सर्वं कर्मक्षये ज्ञानमपास्तदोषम्।
तदा हि संकल्पतरोः फलानि भवन्ति नो वस्तुषु वस्तुभेदाः॥

'जिस समय जीव आत्मज्ञानके द्वारा दोषरहित होकर सम्पूर्ण कर्मोंका क्षय हो जानेसे अपने शुद्ध स्वरूपमें स्थित हो जाता है, उस समय आत्मवस्तुमें संकल्पवृक्षके फलरूप पदार्थ-भेदोंकी प्रतीति नहीं होती।' पुनः आगे कहा गया है कि विज्ञानसे अतिरिक्त कभी कहीं कोई पदार्थादि नहीं है। अपने-अपने कर्मोंके भेदसे भिन्न-भिन्न चित्तोंद्वारा एक ही विज्ञान नाना प्रकारसे मान लिया गया है। वह विज्ञान अति विशुद्ध, निर्मल, निःशोक और लोभादि समस्त दोषोंसे रहित है। वही एक सत्स्वरूप परम परमेश्वर वासुदेव है, जिससे पृथक् और कोई पदार्थ नहीं है। केवल एक ज्ञान ही सत्य है, उससे भिन्न और सब असत्य है।

आगे चलकर आचार्यजीने अपने श्रीभाष्यके पृ० ९६ से १०२ तकके पृष्ठोंमें विष्णुपुराणके ६ठे अंशके पाँचवें अध्यायके अनेक श्लोकोंको अपने मतकी पुष्टिमें उल्लिखित किया है। विशेष अध्ययनके लिये श्रीभाष्यका गम्भीर चिन्तन करना चाहिये, जिससे यह स्पष्ट हो जायगा कि पुराणोंमें इस दर्शनकी मूलभित्ति विद्यमान है।

द्वैताद्वैतदर्शन[२७]— इसके प्रवर्तक श्रीनिम्बार्काचार्य हैं। इनके मतमें यद्यपि ब्रह्म अद्वैत है, किंतु उसीमें जीवमय, स्त्री-पुरुषमय, चराचरजगत् विवर्तित है, अतः वह द्वैताद्वैत इस सार्थक नामसे अभिव्यञ्ज्य है। अपनी दशश्लोकीमें भी उन्होंने अपने मतका सार दिया है। उन्होंने अपने मतकी पुष्टिमें विष्णुपुराणके श्लोकोंको प्रमाणस्वरूप उद्धृत किया है। यथा ब्रह्मके निरूपणमें—

आश्रयश्चेतसो ब्रह्म द्विधा तच्च स्वभावतः।
भूप मूर्तममूर्तं च परं चापरमेव च॥
अमूर्तं ब्रह्मणो रूपं यत्सदित्युच्यते बुधैः॥
समस्ताः शक्तयश्चैता नृप यत्र प्रतिष्ठिताः।
तद्विश्वरूपवैरूप्यं रूपमन्यद्धरेर्महत्॥
समस्तशक्तिरूपाणि तत्करोति जनेश्वर।
एतत् सर्वमिदं विश्वं जगदेतच्चराचरम्।
परब्रह्मस्वरूपस्य विष्णोः शक्तिसमन्वितम्॥
एतान्यशेषरूपाणि तस्य रूपाणि पार्थिव।
यतस्तच्छक्तियोगेन युक्तानि नभसा यथा॥
द्वितीयं विष्णुसंज्ञस्य योगिध्येयं महामते।

(विष्णुपुराण ६। अ० ७)

अर्थात् 'राजन्! (भक्तोंके) मन (ध्यान) का आश्रय ब्रह्म है। वह स्वभावसे दो प्रकारका है—मूर्त और अमूर्त अथवा पर और अपर। जो विद्वानोंद्वारा सत् कहा जाता है, वह ब्रह्मका तात्त्विक रूप अमूर्त है। जिसमें समस्त व्यक्त शक्तियाँ प्रतिष्ठित हैं, वह ब्रह्मका दूसरा परम विचित्र विश्वरूप है। संसारकी समस्त शक्तियाँ इसीसे उत्पन्न होती हैं। सारा विश्व, समस्त चराचर-सृष्टि परब्रह्म विष्णुकी शक्तिसे समन्वित है। हे राजन्! ये सब जीव सर्वव्यापक विष्णुके व्यक्त रूप हैं। जिस प्रकार सारा विश्व तेजोवह आकाशसे व्याप्त है, उसी प्रकार ये जीव विष्णुकी शक्तिसे ओतप्रोत हैं। यह ध्यान करनेयोग्य विष्णुका दूसरा रूप है।' इस प्रकार ब्रह्म अद्वैत और द्वैत (द्वैताद्वैत) दोनों है। जीव और ब्रह्मके बीच वही सम्बन्ध है, जो अंश और अंशीके बीच (अंशांशिभाव) होता है।

द्वैतदर्शन[२८]— इसके प्रवर्तक आचार्य मध्व हैं। इनका दूसरा नाम आनन्दतीर्थ है। इनके द्वारा ब्रह्मसूत्रपर किया गया भाष्य आनन्दतीर्थभाष्य तथा पूर्णप्रज्ञाभाष्य भी कहलाता है। इनका मुख्य सिद्धान्त यही है कि ईश्वर भी सत्य है और जगत् भी सत्य है, इसीलिये इनका सिद्धान्त द्वैतसिद्धान्त कहलाता है। जीव-जगत् ईश्वरके अधीन है और मोक्षका मुख्य साधन विष्णुकी निर्मल भक्ति है। इन्होंने भी विष्णुपुराणके आधारपर ही अपने मतवादकी पुष्टि की है। इनके मतवादकी समीक्षा सौरपुराणमें भी मिलती है। इन्होंने अपने गीताभाष्य तथा ब्रह्मसूत्रभाष्य आदिमें ब्रह्म, पद्म, विष्णु, नारदीय तथा कूर्मपुराणके वचनोंका उदाहरण दिया है। इन्होंने गीताभाष्यके ८। १७में जो वचन दिया है, वह इस प्रकार है—

अनेकयुगपर्यन्तं महाविष्णोस्तथा निशा।
रात्र्यादौ लीयते सर्वमहरादौ तु जायते॥

जैसे कूर्मपुराणमें विष्णुके दिनमें सृष्टि होने तथा रात्रिमें प्रलय होनेकी बात कही गयी है, उसी प्रकार पद्मपुराणमें '**ह्रीयते त्वया जगद्यस्माद्धृदित्येवं प्रभाषसे**' कहकर जगत्की, भगवान् विष्णुद्वारा उत्पन्न, विलीन तथा संहृत होनेकी बात कही गयी है। इसी प्रकार इन्होंने पुराणोंसे और भी अनेक वचन उद्धृत कर अपने मतको पुराणानुकूल सिद्ध करनेका प्रयत्न किया है।

शुद्धाद्वैतदर्शन[२९]—श्रीवल्लभाचार्यजीका अद्वैतवेदान्त-दर्शन शुद्धाद्वैत तथा पुष्टिमार्गके नामसे प्रसिद्ध है। उन्होंने शांकरवेदान्तसे अपने मतकी भिन्नता प्रतिपादन करनेके विचारसे अद्वैतसे पूर्व शुद्ध शब्दका व्यवहार किया है तथा अपने सिद्धान्तको 'शुद्धाद्वैत' नामसे व्यवहृत किया है। भक्तिसम्प्रदायमें यही मत 'पुष्टिमार्ग'के नामसे प्रसिद्ध है। शुद्धाद्वैतका तात्पर्य है संशोधनसहित अद्वैत वेदान्तको स्वीकार करना।

शुद्धाद्वैतमें वेद-उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र, गीता—इस प्रस्थानत्रयीके साथ शब्दप्रमाणको परम प्रमाण मानते हुए श्रीमद्भागवतको वेदके समान प्रमाण माना गया है और प्रस्थानचतुष्टयकी स्थापना की गयी है। प्रमाणके बाद तीन प्रकारके प्रमेय जो इस सिद्धान्तको मान्य हैं, वे हैं—स्वरूपकोटि, तत्त्वकोटि और कार्यकोटि। श्रीवल्लभाचार्यजीके '**हरिरेव प्रमेयः सर्वभावापन्नः**'— (अणुभाष्य) इस भाष्यके अनुसार साक्षात् श्रीकृष्ण ही स्वरूप, तत्त्व तथा कार्यरूप निरूपित हैं। वेदान्तदर्शन (ब्रह्मसूत्र)के सूत्रोंमें जहाँ-जहाँ भी '**स्मर्यते च**' (४। २। १४), '**स्मरन्ति च**' (२। ३। ४७, ३। १। १४) तथा '**दर्शनाच्च**' (३। १। २०, ३। २। २१, ३। ३। ४८) आदि सूत्र आये हैं, उन सभी स्थलोंपर इन्होंने भागवतके ही अनेक प्रमाण दिये हैं, जिनमेंसे यहाँ कुछ उद्धृत किये जाते हैं। '**स्मर्यते च**' (४। २। १४) की व्याख्यामें श्रीमद्भागवतका उदाहरण दिया है, जैसे—

ता मन्मनस्का मत्प्राणा मदर्थे त्यक्तदैहिकाः।
मामेवं दयितं प्रेष्ठमात्मानं मनसा गताः।
ये त्यक्तलोकधर्माश्च मदर्थे तान् बिभर्म्यहम्॥
(१०। ४६। ४)

श्रीकृष्ण उद्धवसे कहते हैं—'प्यारे उद्धव! गोपियोंका मन नित्य-निरन्तर मुझमें ही लगा रहता है। उनके प्राण, उनका जीवन, उनका सर्वस्व मैं ही हूँ। मेरे लिये उन्होंने अपने पति-पुत्र आदि सभी सगे-सम्बन्धियोंको छोड़ दिया है। उन्होंने बुद्धिसे भी मुझे ही अपना प्यारा, अपना

प्रियतम—नहीं, नहीं, अपना आत्मा मान रखा है। मेरा यह व्रत है कि 'जो लोग मेरे लिये लौकिक और पारलौकिक धर्मोंको छोड़ देते हैं, उनका भरण-पोषण मैं स्वयं करता हूँ।' इसी प्रकार आगे कहा है—

एताः परं तनुभृतो भुवि गोपवध्वो
गोविन्द एव निखिलात्मनि रूढभावाः ।
वाञ्छन्ति यद् भवभियो मुनयो वयं च
किं ब्रह्मजन्मभिरनन्तकथारसस्य ॥

(१०।४७।५८)

'इस श्रेष्ठ पृथ्वीपर केवल इन गोपियोंका ही शरीर धारण करना श्रेष्ठ एवं सफल है, क्योंकि ये सर्वात्मा भगवान् श्रीकृष्णके परम प्रेममय दिव्य महाभावमें स्थित हो गयी हैं। प्रेमकी यह ऊँची-से-ऊँची स्थिति संसारके भयसे भीत मुमुक्षुजनोंके लिये ही नहीं, अपितु बड़े-बड़े मुनियों, मुक्त पुरुषों तथा हम भक्तजनोंके लिये भी वाञ्छनीय ही है। हमें इसकी प्राप्ति नहीं हो सकी। सत्य है, जिन्हें भगवान् श्रीकृष्णकी लीला-कथाके रसका चसका लग गया है, उन्हें कुलीनताकी, द्विजातिसमुचित संस्कारकी और बड़े-बड़े यज्ञ-यागोंमें दीक्षित होनेकी क्या आवश्यकता है? अथवा यदि भगवान्‌की कथाका रस नहीं मिला, उसमें रुचि नहीं हुई तो अनेक महाकल्पोंतक बार-बार ब्रह्मा होनेसे ही क्या लाभ?'

अणुभाष्यमें श्रीमद्भागवतके ९।४।६३-६४, १०।८।४०, १०।६४।२२-२३ आदि अनेक प्रमाण यत्र-तत्र उल्लिखित हैं। सारांशमें यह समझना चाहिये कि श्रीवल्लभवेदान्तमें भागवतपुराण ही परम प्रमाण है। इसीलिये इस मार्गमें और इनके अनुयायिवर्गमें विद्वत्ताकी गवेषणाकी अपेक्षा श्रीकृष्णचन्द्रके पदानुरक्तिपर ही अधिक विशेष प्रेम रहता चला आ रहा है। श्रीबल्लभाचार्यजीने श्रीविष्णुस्वामिजीके मतका उपबृंहण किया है और यह शुद्धाद्वैत वेदान्त उसीकी एक शाखा है।

अचिन्त्यभेदाभेदवाद[३०]—वैष्णव मतोंमें श्रीमध्वाचार्यजीकी ही एक शाखा मध्वगौड़ीय चैतन्य महाप्रभुके द्वारा प्रवर्तित है। इस सिद्धान्तका नाम अचिन्त्य-भेदाभेदवाद है। यद्यपि इन्होंने वेदान्तसूत्र(ब्रह्मसूत्र) का भाष्य नहीं किया, किंतु इनकी शिष्य-परम्परामें श्रीबलदेवविद्याभूषणने इनके मतका प्रतिपादन अपने 'गोविन्दभाष्य'में किया है। श्रीचैतन्य-सम्प्रदायके मतानुसार श्रीमद्भागवत ही वेदान्तसूत्रका भाष्य है। इस मतके अनुसार ब्रह्मसूत्रके केवल **'स्मर्यते च'**, **'स्मरन्ति च'** इत्यादि सूत्र ही नहीं, अपितु सभी सूत्रोंके उदाहरण श्रीमद्भागवतसे ही प्रमाणित होते हैं। जैसे ब्रह्मसूत्रका द्वितीय सूत्र—**'जन्माद्यस्य यतः'** और श्रीमद्भागवतका प्रथम श्लोक **'जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादि०'** इत्यादि। इसी प्रकार ब्रह्मसूत्रके **'शास्त्रयोनित्वात्'** (१।१।३) इस सूत्रका भाष्य चैतन्य-मतानुसार श्रीमद्भागवतके प्रथम स्कन्धके दसवें अध्यायमें स्पष्ट प्रतीत होता है[१]। यद्यपि श्रीमद्भागवत तथा गीता आदिके अनुसार जीव पराप्रकृति और माया (जड) अपरा प्रकृति है तथा श्रीकृष्ण स्वयं इन दोनोंके स्वामी सर्वशक्तिमान् हैं तथापि इन तीनोंमें परस्पर भेद है। यह जो युगपत् नित्य-भेदाभेद-सम्बन्ध है, वह मानवबुद्धिके परे अथवा अतीत है अथवा अचिन्त्य है। इसीलिये यह अचिन्त्य-भेदाभेदके नामसे प्रसिद्ध है।

भेदाभेददर्शन[३१]—इसके प्रवर्तक श्रीभट्ट भास्कराचार्य हैं। इन्होंने शंकराचार्यके मतसे भिन्न अपने मतकी स्थापना की है। ब्रह्मसूत्र (३।२।११) के **'न स्थानतोऽपि परस्योभयलिङ्गं सर्वत्र'** सूत्रके अनुसार इनका मतवाद भेदाभेदवाद बताया गया है। संसारको नित्य मानते हुए उसे ईश्वररूप भी मानना भेदाभेद है। इस मतके स्वाभाविक भेदाभेद, निरुपाधिक भेदाभेद, सोपाधिक भेदाभेद तथा

१-स एव भूयो निजवीर्यचोदितां स्वजीवमायां प्रकृतिं सिसृक्षतीम्। अनामरूपात्मनि रूपनामनी विधित्समानोऽनुससार शास्त्रकृत्॥
(१।१०।२२)

अर्थात् 'उन्होंने (परमात्मा श्रीकृष्णने) ही फिर अपने नाम-रूपरहित स्वरूपमें नाम-रूपके निर्माणकी इच्छा की तथा अपनी काल-शक्तिसे प्रेरित प्रकृतिका, जो कि उनके अंशभूत जीवोंको मोहित कर लेती है और सृष्टिकी रचनामें प्रवृत्त रहती है, अनुसरण किया और व्यवहारके लिये वेदादि शास्त्रोंकी रचना की।'

अचिन्त्यभेदाभेद आदि कई अवान्तर प्रभेद हैं।

आचार्य भट्ट भास्करने अपने भास्करभाष्यमें यत्र-तत्र पुराणोंके श्लोकोंको उद्धृत कर अपने मतको प्रमाणित किया है। **'शब्द इति चेन्नातः प्रभावात् प्रत्यक्षानुमानाभ्याम्'** (ब्रह्मसूत्र १।३।२८) के भाष्यमें **'इति पौराणिकाः'**, **'तद्गुणसारत्वात्तु तद्व्यपदेशः प्राज्ञवत्'** (ब्रह्मसूत्र २।३।३९) के भाष्यमें **'तथा चाहुः पौराणिकाः'** तथा **'स्मृतेश्च'** (ब्रह्मसूत्र ४।३।१०) के भाष्यमें **'पुराणस्मृतेश्च'** इत्यादि कहकर पुराणोंको स्मरण करते हुए उनके श्लोकोंको उद्धृत किया है, जिससे यह प्रतीत होता है कि पुराणोंमें सभी विचारों—दर्शनोंका स्पष्ट संकेत विद्यमान है।

समन्वयवाद[३२]— आचार्य विज्ञानभिक्षुने ब्रह्मसूत्रके विज्ञानामृत नामक भाष्यमें सभी दर्शनोंके समन्वयकी चेष्टा की है। उनका सिद्धान्त समन्वयवादके नामसे प्रसिद्ध है। सभी दर्शनोंके समन्वय होनेसे इनका मत भी भेदाभेदवाद-नामसे ही जाना जाता है। ब्रह्मसूत्रके अपने भाष्यमें इन्होंने प्रायः कूर्म, स्कन्द, विष्णु, मत्स्य, विष्णुधर्म तथा नरसिंहादि पुराणोंके सहस्रों श्लोकोंको उद्धृत किया है। यथा **'ईक्षतेर्नाशब्दम्'** (१।१।५) की व्याख्यामें विष्णुपुराणका यह श्लोक दिया है—

नैवाहस्तस्य न निशा नित्यस्य परमात्मनः।
उपचारस्तथाप्येष तस्येशस्य द्विजोच्यते॥

(६।४।४९)

इसी प्रकार **'सर्वथापि त एवोभयलिंगात्'** (ब्र०सू० ३।४।३४)के विवेचनमें कूर्मपुराणके निम्न श्लोक उद्धृत किये हैं—

भगवन् देवतारिघ्न हिरण्याक्षनिषूदन॥
चत्वारो ह्याश्रमा प्रोक्ता योगिनामेक उच्यते।

(१।२।७४-७५)

विशेष जिज्ञासाके लिये ब्रह्मसूत्रके विज्ञानामृतभाष्यके ४।३।११, ४।१।१३, ४।१।३, ३।४।२० इत्यादि अनेक स्थलोंको देखना चाहिये। यहाँ तो प्रमाणस्वरूप किंचित् वचनोंको ही दिखाया गया है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि पुराणके वचन ही इन आचार्योंके लिये प्रबल प्रमाण-स्वरूप रहे हैं।

शिवाद्वैतदर्शन[३३]—इसके प्रवर्तक श्रीकण्ठाचार्यजी हैं। ब्रह्मसूत्रपर इनका भाष्य 'शैवभाष्य' या 'शिवाद्वैतभाष्य' कहा जाता है। इन्होंने अपने मतकी पुष्टिमें मुख्यतः शैवपुराणों—शिवपुराण, लिङ्गपुराण तथा कूर्मपुराण आदिके साथ-साथ वाल्मीकि-रामायणके स्थलोंको भी स्थान दिया है। यथा **'अपि च स्मर्यते'** ब्रह्मसूत्र (२।३।४४) के शैवभाष्यमें इन्होंने शिवपुराण, शतरुद्रसंहिताका निम्न श्लोक प्रमाणस्वरूप लिया है—

आत्मा तस्याष्टमी मूर्तिः शिवस्य परमात्मनः।
व्यापिकेतरमूर्तीनां विश्वं तस्माच्छिवात्मकम्॥

(२।१

इसी प्रकार **'पूर्ववद्वा'** (ब्र०सू० ३।२।२८) सू व्याख्यानमें पुराणोंके वचन देनेके अनन्तर **'इत्यादि पुराणक प्रमाणाच्च'** ऐसा लिखकर अन्य प्रमाणोंसे पुराणोंका प्रामाण्य अधिक प्रदर्शित किया है।

उपर्युक्त विवेचनमें श्रीवैष्णवाचार्योंके सिद्धान्तोंका सू परिचय देते हुए यह स्पष्ट किया गया है कि उन सिद्धान्तोंका स्रोत पुराणोंमें प्राप्त होता है। श्रीरंगुकाचा श्रीकराचार्य (श्रीपतिपण्डित) के अतिरिक्त रुद्रभ विजयभट्ट, विष्णुक्रान्त आदि आचार्योंके भाष्य भी उल्लेखनं हैं, जिन्होंने यत्र-तत्र अपने भाष्योंमें प्रमाणस्वरूप पुराणों वचन उद्धृत किये हैं।

चार्वाकदर्शन[३४]—इस दर्शनके विषयमें पुराणों विस्तृत उल्लेख प्राप्त होता है। इस सम्बन्धमें एक क भी पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड अ० १३, ब्रह्माण्डपुराण उपोद्घात-पादके ७२-७३वें अध्यायमें, मत्स्यपुराण अ० ४ वायुपुराण एवं शिवपुराणादिमें प्राप्त होती है, जिसक सारांश इस प्रकार है—

देवासुरसंग्राममें देवताओंने अनेक प्रसिद्ध दैत्यों, गंधर्व एवं दानवोंका वध कर दिया और अमृत पीनेके कारण वे स्वयं अमर बने रहे। दैत्यगुरु शुक्राचार्य दैत्योंको पुनर्जीवित करनेवाली संजीवनी-विद्या प्राप्त करनेके लिये हिमालय पर्वतपर शंकरकी आराधना करने लगे। इनकी तपस्यामें बाधा पहुँचानेके लिये अपनी पुत्री जयन्तीको शुक्राचार्यके पास उनकी सेवामें भेजा। शुक्राचार्य उसके

आसक्त होकर अपने लक्ष्यसे दूर चले गये। उन्हीं दिनों जयन्तीसे देवयानीका जन्म हुआ। बादमें वे पुनः शिवकी आराधना करने लगे। इधर देवगुरु बृहस्पति अवसर देखकर शुक्राचार्यका रूप धारण कर संजीवनी-विद्याके नामसे दानवोंको चार्वाक-दर्शनका उपदेश करने लगे[1]। इसी बीच शुक्राचार्य भी संजीवनी-विद्या प्राप्त कर जब वहाँ लौटे तब उन्होंने अपने वेषमें वहाँ बृहस्पतिको देखा और दुःखी होते हुए उनसे कहा कि 'आप हमारे शिष्योंको लोकायत-मतका उपदेश देकर अनर्थ कर रहे हैं। मैं आपको अच्छी तरह जानता हूँ, आप देवाचार्य बृहस्पति हैं। आप मेरा रूप धारण कर इन्हें मोहमें डाल रहे हैं' और फिर अपने शिष्योंसे कहा—'ये बृहस्पति तुम्हें हमारा वेष धारण कर धोखा दे रहे हैं। मैं शिवजीसे संजीवनी-विद्या सीखकर आया हूँ। तुमलोग मेरी बात सुनो—इनका परित्याग करो। भगवान् शंकरने हमें तुमलोगोंके पास भेजा है।' इसपर बृहस्पतिने दानवोंसे कहा—'शिष्यो! यह ठीक हमारा रूप धारणकर तुमलोगोंको धोखा देना चाहता है। तुमलोगोंको इसकी वञ्चनामें नहीं पड़ना चाहिये।' इसपर सभी दानव 'साधु-साधु' कहकर शुक्राचार्यसे कहने लगे—'हमारे वास्तविक गुरु यही हैं, जो अपने कथनानुसार समयपर हमारे पास आ गये थे।' इसपर शुक्र अत्यन्त दुःखी हुए और इस तिरस्कारको न सहकर असुरोंको समृद्धिसे हीन होकर नष्ट हो जानेका शाप दे दिया तथा वहाँसे चले गये। जब पुनः एकान्त हुआ तो दानवोंने शुक्र-वेषधारी बृहस्पतिसे पुनः ज्ञान-तत्त्वकी बात पूछी। इसपर बृहस्पतिने उन्हें क्रम-क्रमसे चार्वाक, बौद्ध तथा जैनधर्मदर्शनका उपदेश दिया[2]। यही बृहस्पतिका उपदेश इन दर्शनोंका मूल है।

चार्वाकदर्शन नास्तिक-मत कहलाता है। इस सिद्धान्तके अनुसार केवल दृश्य जगत् ही सत्य है। केवल प्रत्यक्ष ही एकमात्र प्रमाण है। लौकिक सुख प्राप्त करना ही परम पुरुषार्थ है। अदृष्ट कुछ नहीं है और न परलोककी कोई सत्ता है। परलोकके लिये दृष्ट लौकिक सुखोंका परित्याग करना उचित नहीं। न्याय-वैशेषिक या नव्यन्यायके कर्कश तर्कोंके सामने अनुमितिवाद आदि सबल प्रमाणोंके विरुद्ध होनेसे यह मत स्थिर नहीं हो सका। पुराणोंमें पूर्वपक्षके रूपमें इस मतका प्रतिपादन हुआ है।

जैन-दर्शन[35] **और पुराण**—पुराणोंमें जैनमतको 'अर्हत्'-मत कहा गया है और श्रीऋषभदेवजीको इस दर्शनका आद्य आचार्य बताया गया है। भगवान्‌के २४ अवतारोंमें इनकी गणना है। बौद्धोंके चार भेदोंकी भाँति जैनियोंके भी श्वेताम्बर और दिगम्बर (विवसन)—ये दो मुख्य भेद हैं। जैनियोंने बौद्धमत—क्षणिकवादको स्वीकार नहीं किया। '**प्रमेयकमलमार्तण्ड**' आदि जैन-न्याय-ग्रन्थोंमें प्रौढ़ तर्कोंके आधारपर चार्वाक, बौद्ध आदि मतोंका निरसन किया गया है। जैनदर्शन अनेकान्तपक्षीय सप्तभंगीन्याययुक्त स्यादवादके नामसे प्रसिद्ध है। इसमें प्रत्यक्ष, अनुमान तथा उपमान—इन तीन ही प्रमाणोंको माना गया है। शास्त्रप्रमाण तथा अर्थापत्तिको ये प्रमाण स्वीकार नहीं करते। '**आप्तनिश्चयालंकार**' नामक जैन-ग्रन्थमें परमात्माको षडैश्वर्य-सम्पन्न न मानकर काम-क्रोधादिशून्य, जगत्पूज्य, सत्यवादी ज्ञानी पुरुषको ही परमेश्वर माना गया है। जैनदर्शनमें मोक्षको माना गया है, किंतु उसके साधनमें सम्यक्‌दर्शन, सम्यक्‌ज्ञान एवं सम्यकचरित्र—इन तीनोंको सम्मिलितरूपसे कारण माना गया है, जो बहुत कुछ सनातन सिद्धान्तोंसे मिलता है। अहिंसापर जैन तथा बौद्धोंका विशेष आग्रह है। इसलिये पुराणोंने कहीं-कहीं इन दोनोंको एक ही मान लिया है। जैनियोंके लिये

१-यच्च यज्ञादिकं कर्म स्मार्तं श्राद्धादिकं तथा। तत्र नैवापवर्गोऽस्ति यत्रैषा श्रूयते श्रुतिः॥

(पद्म०, सृष्टि० १३। ३२२)

अर्थात् यज्ञ आदि वैदिक कार्य और श्राद्ध आदि स्मार्तकर्म मोक्षदायक या स्वर्गदायक नहीं हैं; क्योंकि इनके अनुष्ठानमें ऐसे दोष हैं, जिनके कारण यदि स्वर्ग मिलेगा तो फिर नरक किन कर्मोंसे प्राप्त होगा?

२-इन सभी विवरणोंसे यहाँ किसी धर्म या दर्शनकी आलोचना तथा निन्दा-स्तुतिसे कोई तात्पर्य नहीं है। पुराणोंमें इनका उल्लेख हुआ है और इनके सूत्र प्राप्त होते हैं। इसी दृष्टिसे यहाँ इनका संग्रह किया गया है।

तत्त्वार्थसूत्र सर्वाधिक आदरणीय तथा प्रमाणभूत है।

बौद्धदर्शन[३६] तथा **पुराण**—प्रायः सभी पुराणोंमें बौद्धमतकी तथा बौद्धावतारकी चर्चा है। तथापि पद्म, स्कन्द, कल्कि तथा एकाम्रादि पुराणोंमें विशेष रूपसे वर्णन आया है। बौद्धमतावलम्बी माध्यमिक, योगाचार, सौत्रान्तिक और वैभाषिक—इन चार सम्प्रदायोंमें विभक्त हैं। बौद्धमत शून्यवाद कहा जाता है। ये सारे जगत्को क्षणिक मानते हैं। बौद्धमत क्षणभङ्गुरवाद तथा क्षणिकवाद भी कहलाता है। इन्होंने प्रत्यक्षके साथ अनुमानको भी प्रमाण माना है। इनकी मान्यता है कि सारा संसार दुःखात्मक है। बोध-विज्ञानके द्वारा संसारसे अलग होना ही परम पुरुषार्थ है। इनके यहाँ विज्ञानका दूसरा नाम आलय-विज्ञान है। वासनाके परित्यागसे आलय-विज्ञानका उदय होता है तथा फिर रूपस्कन्ध, विज्ञानस्कन्ध, वेदनास्कन्ध, संज्ञास्कन्ध तथा संस्कारस्कन्ध—इस पञ्चविध स्कन्धात्मक चित्त और चैत्तात्मक सम्बन्धके पूर्णज्ञानसे सब दुःखोंका अन्त या निर्वाण होता है। पुराणोंमें प्रायः पूर्वपक्षके रूपमें ही बौद्धमतकी चर्चा है और भगवान् कल्किद्वारा अवतार ग्रहण कर शस्त्र तथा शास्त्र दोनोंसे बौद्धमतावलम्बियोंके पराजित होनेका वृत्तान्त भी पुराणोंमें विस्तारसे मिलता है।

माहेश्वर-दर्शन तथा पुराण—माहेश्वर-सम्प्रदायमें दार्शनिक दृष्टिसे प्रमुख चार भेद हैं—(१) पाशुपतदर्शन, (२) शैवदर्शन, (३) प्रत्यभिज्ञादर्शन, (४) वीरशैवदर्शन। पुराणोंमें विशेषरूपसे शैवपुराणोंमें सर्वत्र माहेश्वरदर्शनका विस्तृत विवेचन मिलता है। यहाँपर केवल पाशुपतदर्शन तथा प्रत्यभिज्ञादर्शनका सूक्ष्म विवेचन दिया जा रहा है—

पाशुपतदर्शन[३७] **या नकुलीश पाशुपतदर्शन**—पुराणोंमें इस दर्शनका विस्तारसे वर्णन है। इस दर्शनके संस्थापक नकुलीश (या लकुलीश) थे। इसलिये यह नकुलीश पाशुपत-दर्शन भी कहलाता है। पुराणोंमें नकुलीश्वर-लकुली और लकुलीश नाम भी प्राप्त होता है। इस सम्बन्धमें कूर्मपुराणके पूर्वार्धके ५३वें अध्याय तथा उत्तरार्धके ४४वें अध्याय और लिङ्गपुराणके पूर्वार्धके २४वें अध्यायमें विस्तारसे चर्चा है। दोनों पुराणोंकी कथाओंके सम्मिलितरूपसे अवलोकन करनेपर ऐसा लगता है कि भगवान् शिवने द्वापर और कलियुगकी संधिमें किसी मृतकाय (मृतशरीर) में प्रवेशकर कायावतार धारण किया, नकुलीश कहलाये। वे कुछ दिन सुमेरुगिरिकी गुफा निवासकर फिर कच्छ (गुजरात) के सिद्धक्षेत्र नामक स्थान स्थित हुए, जिसे नकुलीशके मृत-कायामें प्रवेश करने कायावतार सिद्धक्षेत्र कहा जाता है। तभीसे यह क्षेत्र एक पुण्य शैव-तीर्थ हो गया। उपर्युक्त विवरणसे स्पष्ट होता है कि भगवान् शिव ही नकुलीश्वरके रूपमें आविर्भूत हुए।

नकुलीशदर्शनका मुख्य ग्रन्थ पाशुपत पञ्चार्थसूत्र (पञ्चाध्यायी) माना जाता है। इस दर्शनकी मूलभित्ति पाँच पदार्थों—कार्य, कारण, योग, विधि और दुःखान्तके विवेचनपर आधारित है। सभी जड तथा चेतन पदार्थ पशु (कार्य) कहे गये हैं। ये सभी अपने ईश्वर—पति (शिव-महेश्वर) के अधीन हैं, जो कारण कहलाते हैं। जप-ध्यान आदि योगके तथा भस्मस्नान आदि व्रतके द्वारा दुःखका अन्त होता है। इन पञ्चार्थोंका यथार्थ ज्ञान ही मोक्षका मुख्य कारण है। संक्षेपमें यही नकुलीश-पाशुपतदर्शनका सारांश है। कूर्म, ब्रह्माण्ड, शिव (कारवण-माहात्म्य) तथा लिंगादि पुराणोंमें इसकी विस्तृत चर्चा आयी है।

प्रत्यभिज्ञादर्शन[३८]—प्रत्यभिज्ञादर्शन बहुत कुछ अद्वैत-वेदान्तदर्शनसे मिलता है। इसे माहेश्वरदर्शनका ही एक भेद माना जाता है। इसके ९२ आगम-ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं, जिनमें मालिनी, सिद्धा तथा कामिक आगम—ये तीन अति प्रसिद्ध हैं। प्रत्यभिज्ञादर्शनको त्रिकदर्शन तथा काश्मीर-शैवदर्शन भी कहा जाता है। प्रत्यभिज्ञाका शाब्दिक अर्थ है पहचानना। इस दर्शनके अनुसार स्वप्रकाशस्वरूप निरन्तर अवभासमान दृक्क्रियाशक्तिका आविष्कार अर्थात् यह आत्मा ही परमेश्वर है, इस तरह आत्मा और परमात्माको ठीक-ठीक पहचानना ही वास्तविक प्रत्यभिज्ञा है। 'शिवसूत्र' आदि इस दर्शनके प्रारम्भिक मौलिक ग्रन्थ हैं।

पुराणोंमें—लिङ्गपुराणमें संक्षेपमें किंतु शिवपुराणकी कैलास-संहिता (वेंकटेश्वर-संस्करण) के अध्याय १६ से १९ तकमें विस्तारसे इस दर्शनके मौलिक सिद्धान्तोंका प्रतिपादन किया गया है। यहाँ शिवसूत्रोंकी विस्तृत व्याख्या की गयी है। 'प्रज्ञानं ब्रह्म', 'अयमात्मा ब्रह्म' आदि श्रुतिके २२ महावाक्योंका उल्लेखपूर्वक आत्मा-परमात्माकी प्रत्यभिज्ञापूर्वक [illegible]

दिखलायी गयी है। उसी क्रममें कहा गया है—**'इत्यादि शिवसूत्राणां वार्तिकं कथितं मया'** अर्थात् इस प्रकार मैंने (सुब्रह्मण्य-स्कन्दकुमार) शिवसूत्रोंकी व्याख्या की है। शिवपुराणकी वायवीयसंहिताके उत्तरभागमें भी इस दर्शनके मूलभूत विषयोंका वर्णन है।

आगम[३९] और **पुराण**—इष्टदेवकी प्रसन्नता-प्राप्तिके लिये ज्ञानसहित उपासना-विधानका निरूपक शास्त्र ही आगम कहलाता है। आगमोंके विषयमें यह श्लोक अत्यन्त प्रशस्त है—

आगतं शिववक्त्रेभ्यो गतं च गिरिजाश्रुतौ।
एतस्मादागमः प्रोक्तः विद्वद्भिस्तत्त्वदर्शिभिः॥

—इसका तात्पर्य है कि 'तत्त्वदर्शी विद्वानोंने भगवान् शिवद्वारा कथित और पार्वतीद्वारा श्रुत विषयको आगम बतलाया है।' परंतु वैष्णवागमोंमें विष्णु तथा लक्ष्मीका, सौर तथा वैखानस आदि आगमोंमें सूर्य और ब्रह्माका वक्ता-श्रोताके रूपमें निर्देश किया गया है। इसलिये शक्ति और शक्तिमान्‌के संवादमें ही इस व्युत्पत्तिको चरितार्थ मानना होगा।

आगम-साहित्य अत्यन्त विशाल है तथापि मुख्यरूपसे ७ आगम प्रधान माने गये हैं—वैष्णवागम, शैवागम, शाक्तागम, वैखानस (ब्राह्म)-आगम, सौर-आगम, गाणपत्य-आगम तथा सुब्रह्मण्य (स्कान्द)-आगम। इनमेंसे एक-एकके अनेक भेद हैं। वैष्णवागमोंमें पाञ्चरात्र-आगम विशेष प्रसिद्ध हैं। अग्निपुराण अध्याय ३९में हयशीर्ष, त्रैलोक्य-मोहन, वैभव आदि २५ वैष्णव पाञ्चरात्रागमोंका नाम परिगणन किया गया है। इसी प्रकार शिव, कालिका आदि पुराणोंमें शैव, शाक्तादिके विभिन्न सम्प्रदायोंके उपासना-विधानका निर्देश है।

तन्त्र[४०] और **पुराण**—कुलार्णव-तन्त्र (अ० १७) में तन्त्रकी व्युत्पत्ति इस प्रकार बतलायी गयी है—

मुदं कुर्वन्ति देवानां मनांसि तारयन्ति च।
तस्मात् तन्त्र इति ख्यातो दर्शितव्यः कुलेश्वरि॥

—इसका भाव है—पूजा-उपासनासे देवताओंको प्रसन्न करानेवाले तथा साधकोंको संसार-समुद्रसे पार करनेवाले विधायक शास्त्र तन्त्रशास्त्र कहलाते हैं।

तन्त्रोंके मुख्य तीन भेद हैं—१-दक्षिण-मार्ग, २-वाम-मार्ग या कौलमार्ग तथा ३-मिश्रमार्ग। इनमें भी डामर, यामल आदि कई अवान्तर भेद हैं। तन्त्र-ग्रन्थोंमें सबसे प्रधान ग्रन्थ 'तन्त्रराज' है, जिसे प्रायः तीनों मार्गोंके अनुयायी प्रमाण मानते हैं।

पुराणोंमें तन्त्रोंका विशाल साहित्य उपलब्ध है। नारदपुराणके पूर्वभागके ६४ से ९१ तकके अध्यायोंमें प्रायः तन्त्रोंका ही विषय विवेचित है। इसके पूर्वभागके ८४ से ९१ तकके अध्यायोंमें तन्त्रराजके प्रायः सभी विषय आ गये हैं। इसी प्रकार गरुडपुराण तथा अग्निपुराण आदिमें अध्याय २३ से ३७, ७१ से ९१, १२३ से १४९ तक तथा पुनः २९३ से ३२६ तक विभिन्न तन्त्र-मन्त्रोंका निरूपण है।

वास्तुशास्त्र[४१]—वास-स्थान या निवास-स्थानको वास्तु कहा जाता है और इससे सम्बद्ध बातोंका जिस शास्त्रमें वर्णन रहता है, वह वास्तुशास्त्र है। मुख्यरूपसे वास्तुशास्त्रके अन्तर्गत भूमि-सम्बन्धी—नगर आदिकी रचना-सम्बन्धी तथा गृहके उपकरणभूत—वापी, कूप, तड़ाग, उद्यान-रचना, वृक्षारोपण, भैषज्य-दोहन आदि विषयोंका वर्णन रहता है। वास्तुके शुभाशुभ होनेपर ही भूमि-शोधनादिकी क्रिया सम्पन्न करनेपर निर्माणकार्य करना चाहिये। यदि वास्तु अशुभ हो तो गृहस्थको पद-पदपर कष्ट होता है, अनेक उपद्रव होते हैं और शुभ होनेपर सुख-शान्ति रहती है। इन दृष्टियोंसे वास्तुशास्त्रका ज्ञान आवश्यक कहा गया है।

मुख्यतः वास्तुशास्त्रका सम्बन्ध स्थापत्यकलासे है। ऋग्वेद तथा अथर्ववेदमें भी इसका उल्लेख प्राप्त होता है। यद्यपि यह एक स्वतन्त्र शास्त्र है, इसके परवर्ती ग्रन्थोंमें 'वास्तुराजवल्लभ' तथा 'समराङ्गणसूत्रधार'—ये दो महत्त्वपूर्ण तथा उल्लेख्य ग्रन्थ हैं। किंतु पुराणोंमें विशेषरूपसे मत्स्यपुराण (अ० २५२-२५६), विष्णुधर्मोत्तरपुराण (द्वितीय खण्ड अ० २९, तृतीय खण्ड अ० ९४-९५), अग्निपुराण (अ० ९३, १०४-१०६) तथा गरुडपुराण आदिमें वास्तुशास्त्रके महत्त्वपूर्ण विषयोंका वर्णन हुआ है। मत्स्यपुराण (अ० २५२) में वास्तुशास्त्रके भृगु, अत्रि, वसिष्ठ, विश्वकर्मा, मय, नारद, नग्नजित्, भगवान् शंकर, इन्द्र, ब्रह्मा, कुमार, नन्दीश्वर,

शौनक, गर्ग, वासुदेव, अनिरुद्ध, शुक्र तथा बृहस्पति—ये अठारह उपदेष्टा आचार्य बताये गये हैं, जिनमेंसे देवताओंके शिल्पीके रूपमें विश्वकर्माकी तथा दानवोंके शिल्पीके रूपमें मयकी अधिक प्रसिद्धि है। '**विश्वकर्मशिल्पम्**' तथा '**मयशिल्पम्**'— ये इनके ग्रन्थ कहे जाते हैं।

वास्तुके प्रादुर्भावके कथा-विषयमें मत्स्यपुराण (अ० २५१) में बताया गया है कि प्राचीन कालमें अन्धकासुरके वधके समय भगवान् शंकरके ललाटसे पृथ्वीपर जो स्वेदबिन्दु गिरे, उनसे एक भयंकर आकृतिवाला पुरुष प्रकट हुआ, जो विकराल मुख फैलाये था। उसने अन्धकगणोंका रक्त पान किया, किंतु तब भी उसे तृप्ति नहीं हुई और वह भूखसे व्याकुल होकर त्रिलोकीको भक्षण करनेके लिये उद्यत हो गया। बादमें शंकर आदि देवताओंने उसे पृथ्वीपर सुलाकर वास्तुदेवताके रूपमें प्रतिष्ठित किया और उसके शरीरमें सभी देवताओंने वास किया, इसलिये वह वास्तु (वास्तुपुरुष या वास्तुदेवता)के नामसे प्रसिद्ध हो गया। देवताओंने उसे गृहनिर्माणादिके, वैश्वदेव बलिके तथा पूजन-यज्ञ-यागादिके समय पूजित होनेका वर देकर प्रसन्न किया। इसीलिये आज भी वास्तुदेवताका पूजन होता है। वास्तुदेवताके शरीरमें ६४ तथा ८१ देवताओंके स्थित होनेकी बात पुराणोंमें वर्णित है। इसी आधारपर पूजन आदिमें जो वास्तुचक्र बनता है, उसमें शिखी, जयन्त, पर्जन्य, इन्द्र, सूर्य आदि वास्तुमण्डलस्थ देवताओंका पूजन किया जाता है। इसके पूजनसे कोई विघ्न नहीं होता तथा सुख-शान्ति रहती है। अग्नि आदि पुराणोंमें इसकी विस्तृत पूजा-विधि निर्दिष्ट है। वाराहीसंहिताकी महोत्पली व्याख्यामें इस विषयका साङ्गोपाङ्ग विवेचन हुआ है।

शिल्पशास्त्र[४२]—पुराणोंमें प्रभासनामक अष्टम वसुके पुत्र विश्वकर्माको समस्त शिल्पशास्त्रों तथा कलाओंका आचार्य कहा गया है[१]। इन्होंने अपने पुत्रों तथा शिष्योंके साथ शिल्पशास्त्रका प्रसार-प्रचार किया। विविध कलाएँ जो मुख्यरूपसे हाथसे सम्पादित होती हैं, शिल्प कही जाती हैं; इन्हींका परिज्ञान करानेवाला शास्त्र शिल्पशास्त्र कहा जाता है, इसे शिल्पविद्या भी कहते हैं। इसके अन्तर्गत प्रासाद-शिल्प, आभूषण-घड़न-शिल्प, धातु एवं रंगोंके मिश्रण-सम्बन्धी शिल्प, काष्ठशिल्प, उद्यान-रचना-शिल्प, पात्र-शिल्प, शस्त्रनिर्माण-शिल्प, वायुयान-निर्माण-शिल्प, भित्ति-शिल्प आदि विविध कलाओंका समावेश होता है। विविध शिल्पोंके ज्ञाता वास्तुकार, रथकार, मालाकार, कांस्यकार, लौहकार, काष्ठकार, स्वर्णकार, मणिकार, कुम्भकार आदि नामोंसे जाने जाते हैं। मत्स्य तथा विष्णुधर्मोत्तरपुराणमें शिल्पशास्त्रका विस्तारसे वर्णन है।

चित्रशास्त्र[४३]—चित्रशास्त्र या चित्रकला अति प्राचीन विद्या है। पुराणोंमें भगवान् नारायणको इस कलाका आद्य आचार्य तथा प्रवर्तक कहा गया है। विश्वकर्माने उनसे यह कला सीखी और फिर सर्वत्र इसका प्रचार-प्रसार हुआ। आज विश्वमें जिस चित्रकलासे सम्बन्धित अनेकों ग्रन्थ निर्मित हो रहे हैं, उसके मूल सूत्र पुराणोंमें विद्यमान हैं। इस सम्बन्धमें पुराणोंमें कथाएँ प्राप्त होती हैं, जिनका सारांश इस प्रकार है—

भगवान् नर-नारायण बदरिकाश्रममें लोक-कल्याणकी कामनासे तपस्या कर रहे थे। उनकी तपस्यासे देवराज इन्द्र सशंकित हो गये। उन्हें यह भय लगने लगा कि ये मेरा इन्द्रासन प्राप्त करनेके लिये ही ऐसी कठोर तपस्या कर रहे हैं। इन्द्रने नर-नारायणकी ऐसी तपस्यामें विघ्न डालनेके उद्देश्यसे कामदेव तथा कुछ अन्य देव-गन्धर्वोंको अनेक अप्सराओंके साथ वहाँ भेजा, किंतु वे उन्हें विचलित न कर सके और उनके शापसे भयभीत हो गये। उसी समय नारायणने आँखें खोलीं। वे तो सर्वान्तर्यामी हैं ही। इन्द्रकी चाल वे समझ ही रहे थे। उन्होंने अप्सरा तथा गन्धर्वादिको अभय प्रदान करते हुए कहा—'इन्द्रके कहनेपर तुम्हें भी यह विश्वास था कि

१-विश्वकर्मा प्रभासस्य पुत्रः शिल्पी प्रजापतिः।
प्रासादभवनोद्यानप्रतिमाभूषणादिषु । तडागारामकूपेषु स्मृतः सोऽमरवर्धकिः॥
(मत्स्य० ५। २७-२८, विष्णुपु० १। १५। ११८-२५, ब्रह्मपु० १। १५६-१५९, वायुपु० २। ५। २८-३० तथा ब्रह्मवैवर्तपुराण, श्रीकृष्णजन्म खण्ड अ० १११
सभी स्थलोंपर ये श्लोक प्रायः एक समान ही हैं।

[redacted] देवताओंकी विभिन्न प्रतिमाओं और

अपनी यह दुर्बलता और किसीके सामने व्यक्त न कीजियेगा।' किंतु दुर्जयके मुखपर ताला लग गया था; वे कुछ बोल न सके। पतिव्रताने अपनी आध्यात्मिक शक्तिसे उर्वशीवाली घटना जान ली। बोली—'स्वामिन्! मैं सब कुछ जान चुकी हूँ। मेरा सुख आपके सुखमें ही निहित है। मैं आपसे अप्रसन्न नहीं हूँ, किंतु आपसे पाप तो हो ही गया है। उसका प्रायश्चित्त होना आवश्यक है, नहीं तो पाप अगले दुःखका कारण बन सकता है।'

अपनी पत्नीका उदात्त आश्वासन पाकर राजा दुर्जयका मन हलका हो गया। वे महर्षि कण्वके आश्रममें गये। उन्होंने महर्षि कण्वसे अपने इस पापका प्रायश्चित्त पूछा। महर्षिने प्रायश्चित्तके विधान बता दिये। प्रायश्चित्त जानकर वे हिमालयपर पहुँचे। वहाँ उनकी दृष्टि एक गन्धर्वपर पड़ी, जिसने एक दिव्य माला पहन रखी थी। उस मालासे उसका सारा शरीर शोभासे जगमगा रहा था। राजाके मनमें आया कि शृङ्गार किया और अपनेको कृतार्थ माना।

यह राजा दुर्जयके पतनकी पराकाष्ठा थी। कहाँ तो अपनी पत्नीके निर्देशसे सत्पथकी ओर अग्रसर हुए थे और कहाँ फिर आ गिरे। उन्हें न तो अपनी पत्नीका ध्यान था, न कण्व ऋषिसे पाप-निवारण-हेतु प्रायश्चित्त पूछनेका ही।

उर्वशीका जीवन वासनामय तो अवश्य था, किंतु वह आगे-पीछे सोच सकती थी। उसने आँक लिया कि उसकी पतिव्रता स्त्री एक-न-एक दिन मुझे अवश्य शाप देगी; क्योंकि मैं उस पतिव्रताकी लगातार अवहेलना कर रही हूँ। यह सोचकर उर्वशीने अपना रूप उत्कट बना लिया। उसका प्रत्येक अङ्ग रोषसे भर गया। आँखें पीली-पीली हो गयीं। दुर्जयका मन उर्वशीकी ओरसे फिर गया। वासनाका भूत उनके सिरसे उतर चुका था। अब वे आत्म-निरीक्षण कर सकते थे। उन्होंने अपनेको बहुत धिक्कारा और कण्व ऋषिके बताये पथपर आ गये। घोर तपस्या कर फिर महर्षि कण्वके